# ॐ

# भावी क्रांति का स्वरूप

व्यक्ति और उसका जीवन पूर्णतः रूपांतरित होने चाहियें। नई चेतना– अतिमानसिक चेतना – जो विश्व में अवतरित हुई है उसने यह कार्य अपने हाथ में लिया है। अब देखना है कि वह मनुष्य को कैसे तैयार करती है, कैसे उसे जगाती है, कैसे उसमें रूपांतर के लिए अभीप्सा उत्पन्न करती है। कुछ भी हो, यह होगा अवश्य। श्रीअरविन्द और श्रीमाताजी अपने अनुभव-सिद्ध कथन में मनुष्य और उसके जीवन का आत्मा की दिव्यता में रूपांतरण एक अवश्यंभावी प्रकरण मानते हैं।

सुखवीर आर्य

# भावी क्रांति का स्वरूप
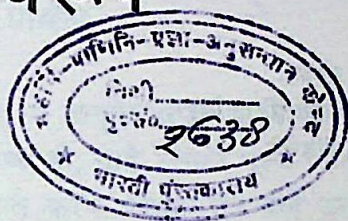
सुखवीर आर्य

श्रीअरविन्द चेतना धारा
पांडिचेरी

प्रथम संस्करण — १०००

*मुद्रक :*
ऑल इंडिया प्रेस
पांडिचेरी



मूल्य : ६० रुपये

Rs. 50.00

*प्रकाशक :*
श्रीअरविंद चेतना धारा
पांडिचेरी

## प्रार्थना

हे प्रभो ! अगर मनुष्यों में जागृति उत्पन्न करने के लिए कोई संजीवनी कहीं उपलब्ध हो, चाहे उसका मूल्य कितना भी ऊँचा हो, मैं उसे प्राप्त करना चाहता हूँ। चाहे उसके लिए मुझे बिकना भी पड़े। मेरा अंतर कहता है सृष्टि में ऐसी संजीवनी उपलब्ध है। मैं उसे प्राप्त करके रहूँगा। किसी भी मूल्य पर हस्तगत करूंगा, लाकर मानवता के चरणों में रख दूंगा। तू जानता है मैं संपूर्ण मनुष्य जाति को अपनी आत्मा के समान प्रेम करता हूँ। उसके उत्थान में, उसे सुखी करने के लिए, सर्वस्व की बलि चढ़ाने को सदा तत्पर हूँ।'

हे जग-जीवन धन ! ऐसा कर कि शीघ्र ही मनुष्य वह दिन देखे जब संसार सच्चे सुख में डूबा हो। उस सुख में बाधक, उसे नष्ट करनेवाला कोई भी तत्व पृथ्वी के वातावरण में न रहे।

## अनुक्रम


आत्म-कथ्य ८
आत्म निवदन २२
जागरण की वेला २३
जीवन दर्शन २४
दिव्य प्रेम २६
अंतदर्शन २७
प्रार्थना पथ है २९
चेतना का परिवर्तन ३०
सही चुनाव ३१
आत्म-चिंतन ३२
शास्त्र वाचा ३४
एक समाधान ३६
मनन करें ३८
विशालता में उठें ४०
आत्म-स्थित ४१
धार्मिकता पर्याप्त नहीं ४२
शास्त्र-वचन ४३
धरती, धर्म से ४५
कारण भीतर खोजें ५५
जीवन का सही स्वरूप ५८
योगारूढ़ता – तीन चरण ५९

आत्म-साक्षात्कार ६६
तादात्म्य ६८
अनुभूति ७०
भीतर झांकें ७२
अहंशून्यता ७४
परिवर्तन संभव ७६
स्वप्न जगत ७९
सुनहरी कुंजी ८०
समत्व भाव ८१
शरीरं धर्म साधनम् ८३
शांति ८४
परिस्थिति सबकुछ नहीं ८६
कामना की आहुति दें ८७
दिनचर्या ८९
संकेंद्रित ९०
क्रांति ९१
शास्त्र अध्ययन ९२
भावी वैज्ञानिक ९३
दुर्बल क्यों १०२
बाह्य दृष्टि १०४
आत्म-विकास— चरम अवस्था १०६
मुक्त चेतना १०८
प्रश्नोत्तर ११०

विशालता में सच्चा सुख ११४
शिकायत समाधान नहीं ११७
अतिमानसिक विकास ११९
धैय-सहनशीलता १२६
आत्म-संतुष्टि— एक अंध कूप १२८
आत्म-संतुष्टि— सच्चा स्वरूप १३३
प्रभु प्रसन्नता १३६
मूल तत्व १४१
धर्म संकीर्णता १४३
साधनामय जीवन १४६
अतिमानस अवतरण १४७
दिव्य माली १४८
सूत्र १४९
भावना के प्रदेश में १५५
साधन-क्षेत्र १५७
भावी क्रांति का स्वरूप १५८
सीमित अहं के पार १६३
वेद सूर्य १६४

## आत्म-कथ्य

भावी क्रांति आध्यात्मिक होगी। जिसके द्वारा अतिमानसिक चेतना मनुष्य की मानसिक चेतना का स्थान ग्रहण करेगी। उसके द्वारा अपने स्वाभाविक गुणों को चरितार्थ करेगी। विश्व-भाव को मनुष्य जाति के लिए स्वाभाविक वस्तु का रूप प्रदान करेगी। मनुष्य के वर्तमान बौद्धिक प्रकाश में प्रवाहित जीवन में से आध्यात्मिक जीवन का प्रादुर्भाव होगा। मानवता अहंकार के शासन से मुक्त होकर आत्मा से प्रेरित-चालित होगी। समाज आत्म-सत्य का पुजारी होगा। विश्व-प्रेम में उत्थान, उसकी चरितार्थता मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति होगी। संसार भ्रातृत्व की भावना में बंधेगा। धर्म आध्यात्मिक जीवन में उठने के लिए सोपान मात्र होंगे। उसकी तैयारी के क्षेत्र रहेंगे। हर धार्मिक व्यक्ति अपनी भावनाओं की परिधि में बंद न रहकर दूसरों की भावनाओं को महत्व प्रदान करेगा। उसके चिंतन में एक नई दिशा प्रस्फुटित होगी। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि परमात्मा की प्राप्ति में धर्म भी अनेक साधनों में से एक सुंदर सहायक साधन है, मानव आत्मा के ऊर्ध्वारोहण में, उसके विश्व-रूप होने में एक प्रकाशमान सोपान है। अतः वह धर्म को उतना ही महत्व प्रदान करेगा जितना आवश्यक है। उसे चरम प्राप्ति के एक मात्र साधन के रूप में स्वीकार नहीं करेगा। आत्मा की उपलब्धि के लिए उसी के ऊपर

पूर्णतः निर्भर नहीं करेगा। वह समझेगा कि मानव जीवन के दूसरे क्षेत्रों की भांति धर्म को भी अपनी चरम परिपूर्णता के लिए आध्यात्मिकता की शरण ग्रहण करनी होगी। तभी संसार में व्याप्त नाना धर्म अपने बाह्य स्वरूप में आत्मा के सत्य को, उसके एकत्व को अभिव्यक्त करने में सफल होंगे। हर जाति के मनुष्य धार्मिक सीमाओं में, उसकी संकीर्णता में घुटन अनुभव करेंगे। यह आंतरिक घुटन उन्हें आत्मा की विशालता में उठने के लिए प्रेरित करेगी। केवल धार्मिक होकर वे संतुष्ट नहीं होंगे। धार्मिक कर्तव्यों के पालन में ही जीवन भर लगे रहना उन्हें नहीं रुचेगा। वे समझेंगे कि जीवन एक खोज है, उन्हें अपने अंदर ईश्वर को, अपने सच्चे स्वरूप को खोजना है। और इसके लिए वे आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करने में अपना श्रेय समझेंगे।

समाज का जो स्वरूप वैदिक ऋषियों की दृष्टि में था, वही स्वरूप प्रदान करने की ओर भावी क्रांति अभिमुख होगी। वैदिक संस्कृति के विशाल एवं व्यापक स्वर्णिम पंखों के साये में प्रवाहित, परस्पर स्नेह-भरी भावनाओं से युक्त, एक सूत्र में बंधने के दिव्य आदर्श पर आधारित जीवन इस क्रांति का व्यावहारिक रूप होगा। भ्रातृत्व की भावना इसमें आगे-आगे चलेगी। दूसरे धर्मावलंबियों के विश्वासों को सम्मान प्रदान करना इसकी विशिष्टता होगी। विश्व-प्रेम की पताका लेकर मनुष्य आगे बढ़ेगा। जो सभी जातीय तथा

राष्ट्रीय पताकाओं में सर्वोच्च स्थान ग्रहण करेगी। मनुष्य के चिंतन में मानवता, उसका मंगल, उसका आत्म-विकास, उसके अधिकार सर्वोपरि रहेंगे। जातीय तथा राष्ट्रीय अंतर केवल बाह्य व्यवहार की वस्तु रहेगी। आंतरिक स्तर पर मनुष्य आत्मा के एकत्व की महत्ता, उसमें निवास की उपयोगिता समझेंगे।

क्रांति के इस क्षेत्र में हम बौद्धिक मन को आगे रखकर नहीं उतरेंगे। वरन्, आध्यात्मिक चेतना के सर्वोच्च स्तर, अतिमानस को चरितार्थ करेंगे। अतिमानस भागवत चेतना है। वेद वर्णित महः है, जिसे उपनिषदें विज्ञान कहकर संबोधित करती हैं। अतिमानस अपने प्रभाव के द्वारा संसार में आत्मा की दिव्यता का अवतरण संभव बनायेगा। जिसके परिणाम स्वरूप मानव जीवन का स्तर ऊँचा उठेगा, उसमें दिव्यता प्रवाहित होगी। वह रूपांतरित होगा। दुख-दैन्य से पूर्णतः मुक्त होकर आत्मा के आनंद से भरपूर हो उठेगा।

देख रहा हूँ, मनुष्य निरर्थक कष्ट पाते हैं, व्यर्थ परेशान रहते हैं। वास्तव में उनकी परेशानी का कारण भीतर है। उनकी प्रकृति में है। शास्त्रों के अनुसार मनुष्यों के कष्टों का एक मात्र कारण उनका आत्म-अज्ञान है। आत्मा के प्रति सचेतनता का अभाव है। जिसका व्यावहारिक रूप होता है मानव चेतना में पृथकत्व का भाव, उसकी स्वार्थ-भावना, विचारों में उसकी संकीर्णता, अहंकार के साथ उसका सतत तादात्म्य। आज संसार को ऐसा व्यक्ति

अथवा ऐसे व्यक्तियों का एक समूह चाहिये जो मानव-जाति की इस समस्या को समझ सके, उसका उपाय खोज सके, उसका समाधान प्रदान करने में समर्थ हो अर्थात् संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठाकर आत्मा की विशालता में स्थित कर सके।

सभी देशों को मिलकर अथवा पृथक्-पृथक् ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना होगा जिनका चेतना स्तर आध्यात्मिक हो। जो परमात्मा को पूर्ण रूप से समर्पित हों। जिनका जीवन आंतरिक सत्य की अभिव्यक्ति हो। हर विचार उच्च चेतना की चरितार्थता हो। जो मानव मात्र को अपना सखा समझें। आत्मीय अनुभव करें। सारे विश्व को एक परिवार देखें। जिनकी दृष्टि में सब अपने होंगे। कोई पराया नहीं होगा। दूसरों को सुखी करना, उनकी आत्म-उन्नति में अपने सुखों की परवाह न करना जिनका स्वभाव होगा। जिनका जीवन मानवता के लिए, मानव में भगवान के लिए होगा। ये व्यक्ति अथवा इनके द्वारा निर्धारित कोई एक व्यक्ति जब संसार की व्यवस्था करेगा — जिसके अंदर शासक के भाव से अधिक सेवक का भाव होगा, जिसके प्रति संपूर्ण देश भीतर से श्रद्धा रखेगा— उस काल को हम स्वर्णिम युग कहेंगे, जिसके आगमन में हर व्यक्ति आंतरिक संतुष्टि अनुभव करेगा। आत्मा के आनंद में निवास, कर्मों में उसकी चरितार्थता, उसका जीवन होगा।

(२)

इस क्रांति का प्रथम स्वरूप आंतरिक होगा। हमें अपने अंदर भावों में, विचारों में, दृष्टि में, वस्तुओं को मूल्य प्रदान करने में परिवर्तन लाना होगा। एक नया दृष्टिकोण अपनाना होगा – जो कि आध्यात्मिक होगा। उसे आधार बनाकर वस्तुओं का मूल्यांकन करना होगा। जिसमें हर मूल्य वस्तुओं में छिपी आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति पर निर्भर करेगा। आज तक हमारी सत्ता का जो सत्य स्वरूप हमसे छिपा है उसकी खोज करनी होगी। शास्त्रों में मार्ग अनेक हैं, हर युग में महापुरुषों के द्वारा दर्शाये गये हैं। किन्तु जो हमारी आत्मा की चिर प्यास बुझा सके, हमारी सभी समस्याओं का स्थायी समाधान प्रदान कर सके यह संभावना हर मार्ग में नहीं है। यही कारण है कि हमें आज तक सही समाधान प्राप्त नहीं हुआ। जो प्रदान किये गये वे अपूर्ण थे। उनको व्यवहार में लाने के उपरान्त भी हमारी समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी हैं।

हमें जो ज्ञान अपने तथा जगत के विषय में कराया गया है, हम उससे संतुष्ट नहीं हैं। हमारी दृष्टि में वह अपूर्ण है, आंशिक है, केवल सतही है। हम मन, शरीर, इंद्रियाँ मात्र नहीं हैं। यह मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विवरण नहीं हो सकता। हमारा अंतर कहता है कि मनुष्य के अंदर एक विकासोन्मुखी आत्मा का होना अनिवार्य है, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व का सच्चा आधार होना चाहिये। जिसपर उसके

विकास की संपूर्ण धारा – उसके प्रथम जन्म से लेकर उस दिन तक निर्भर करती है जब वह अपने सच्चे स्वरूप के प्रति सचेतन होता है और उस एकमेवाद्वितीयम् के साथ तादात्म्य लाभ करता है, जो सबका आदि मूल है। जिसकी प्राप्ति के पश्चात् मानव आत्मा आवागमन से, सब प्रकार के बंधनों से मुक्त होकर – एक ओर, अनंत अमृत-सिंधु में निवास करती है और दूसरी ओर – यहाँ, संसार में कर्तव्य-पालन में रत रहती हुई मुक्त-भाव विचरण करती है।

हमें उन सभी समाधानों को, सिद्धान्तों को एक ओर रख देना है– चाहे वे आचार्यों के द्वारा निर्धारित हों, अथवा अन्य प्रबुद्ध मनों के द्वारा – जो हमारी, संपूर्ण जाति की समस्या का समाधान प्रदान करने में समर्थ न हों। हमें वह समाधान स्वीकार नहीं जो समस्या की ओर से पीठ फेरता हो। जीवन-गुत्थी अगर नहीं सुलझी तो जीवन से दूर भागता हो। सांसारिक जीवन में दुख-कष्टों को देखकर संसार का त्याग करने को कहता हो। अगर हम पदार्थों और प्राणियों में भगवान को नहीं देख पाते, स्वयं अपने अंदर एक विकसित होती हुई आत्मा को अनुभव नहीं कर सकते तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि पदार्थ एवं प्राणी मिथ्या हैं, हमारा अपना अस्तित्व मिथ्या है। इसी प्रकार दूसरी ओर संसार में वस्तुओं की क्षण-भंगुरता को देखकर पलायन के मार्ग को समाधान के रूप में स्वीकार करने के लिए हमारी अंतःसत्ता उद्यत नहीं है। उसे दुर्बलता प्रतीत होता है। अगर

मानव-जीवन-स्तर निम्न है तो हम उसे ऊँचा उठायेंगे। उसमें नये तत्वों का अवतरण संभव बनायेंगे। उन तत्वों को, शक्तियों को खोजेंगे — जड़-तत्व में चेतनता लाना, अदिव्य में दिव्यता प्रकट करना, अज्ञान-अंधकार को आत्मा की ज्योति में रूपान्तरित करना जिनकी सहज-स्वाभाविक क्षमता हो।

आज तक की सभी क्रांतियाँ जिसकी तैयारी मात्र थी, जिसके लिए क्षेत्र निर्माण कर रही थी, सुदूर भविष्य में आनेवाली क्रांतियों में जो श्रेष्ठतम कहलायेगी, संसार के उत्थान के लिए, उसके रूपांतरण के लिए सभी उपयुक्त सामग्री, सभी दिव्य बीज जो अपने हृदय में धारण कर रही है, जिसके आगमन की पूर्व-सूचना हम आज की उषा के साथ प्राची में उसके ऊँचे ललाट के ज्योतिर्मय तेजपुंज से द्युतिमान पृथ्वी के वातावरण को लख कर अनुभव कर रहे हैं। जो अंधकार को तिरोहित करती हुई, अपने स्वर्णिम पंखों को फैलाये पृथ्वी की ओर बढ़ रही है। भावी क्रांति, जिसे हमने आध्यात्मिक क्रांति कहा है, अपने मंथन में मनुष्य को वे सब वस्तुएँ प्रदान करेगी जो उसके जीवन को सत्य की, प्रेम की, न्याय की चरितार्थता का रूप प्रदान करने में समर्थ होंगी। मनुष्य धार्मिक, जातीय तथा सांप्रदायिक सीमाओं से ऊपर उठेंगे और सबके आदि मूल अनादि तत्व को समर्पित रहते हुए जीवन यापन करेंगे। विश्व-वृक्ष के मूल में एक बीज को देखेंगे। संसार को एक अखंड, अद्वितीय पुरुष की रचना, उसका विस्तार देखेंगे।

आज तक की सारी क्रांतियाँ बौद्धिक थीं। जिन शक्तियों के द्वारा व्यवस्थित, संयोजित की गईं वे उच्च आदर्शों से पूर्ण, उस मन के द्वारा प्रेरित थी जिसने आध्यात्मिक ज्ञान-सूर्य की पहली किरण ग्रहण की थी और पूर्ण सूर्य का प्रखर प्रकाश अभी जिसकी पहुँच के परे था। यही कारण है कि संसार पूर्णतः तमहीन न हो सका। वसुंधरा का वातावरण धुंधला-सा, ज्ञान-अज्ञान के मिश्रित प्रकाश से आच्छादित रहा। जिसमें मुक्त चेतना की प्राप्ति का मार्ग हम खोजते रहे, हमें मिला नहीं। मनुष्य अहंकार की, सीमित अहं की परिधि का अतिक्रमण न कर सका। आत्मा की सीमाहीन अनंत चेतना में न उठ सका। फलस्वरूप हमें अपनी सभी समस्याओं के समाधान उपलब्ध न हुए। मनुष्य जाति परस्पर आत्मा के एकत्व के बंधन में न बंध सकी। मनुष्य-मनुष्य के बीच दूरी बढ़ी, जाति-जाति के बीच अंतर पनपता गया। धर्म-धर्म के बीच विरोध का भाव ठोस रूप ग्रहण करता गया। मनुष्य अन्य जाति के मनुष्य को, अन्य धर्म के अनुयायियों को अपना न देख सका, अपना न कह सका। तनाव बढ़ता रहा। कलह जारी रही। युद्ध-महायुद्ध होते रहे। मनुष्य भ्रातृत्व के भाव की महत्ता न समझ पाया। अत्यंत प्रयास के पश्चात् भी प्रेम का पाठ न पढ़ पाया। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के चेतना-स्तर पर उठकर मानव मात्र को गले न लगा सका। धरती माता की एक गोद में दूसरे भाइयों के साथ न बैठ सका। उसके हृदय में ग्रंथियाँ बनी रहीं। जिनके कारण

वह दूसरों से पृथक् रहा और चाह कर भी न मिल पाया। मिलकर चलना, मिलकर रहना, मिलकर उन्नति करना आदि भाव उसके अंदर न उभर सके। पृथ्वी के वातावरण में दिन-दिन अवतरित होती हुई अतिमानसिक शक्ति मानव चेतना से उन सभी ग्रंथियों को समूल नष्ट करेगी। आवश्यक समझेगी तो उनका रूपांतर करेगी। मानव जातीय स्तर पर हल्के अनुभव करेंगे। मानों उनके ऊपर एक बोझ था जो उन्होंने उतार फेंका है।

(३)

बहुत सी पार्टियों का होना बुद्धिमत्ता की निशानी नहीं है। इसका अर्थ है कि एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं, आत्मा की गहराई में जिसका निवास हो, उसकी उच्चता से जो चालित हो, उसकी विशालता जिसका स्वाभाविक स्तर हो। जिसके साथ सभी अपने सुख-दुख बांट सकें। जो सबकी पीड़ा का अनुभव करने में समर्थ हो। इतिहास के पृष्ठों पर ऐसे महान व्यक्तियों का महान चरित्र हमें देखने को मिलता है। यह संभव है। ये व्यक्ति मानव जाति की सभी समस्याओं का सही समाधान प्रदान करने में समर्थ होते हैं। ऐसे व्यक्ति का चेतना-स्तर बौद्धिक न होकर आध्यात्मिक होता है। यह तभी संभव होता है जब हमें वह चेतना सुलभ हो जाती है जो दिव्य है, विशाल है, वैश्विक है। तभी हम मानव-जाति के स्वभाव की दुर्बलताओं को, समस्याओं को जान सकते हैं। उनका समाधान प्रदान करने में समर्थ होते हैं।

भविष्य में ऐसा आध्यात्मिक चेतना से युक्त व्यक्ति ही संसार में शासन करेगा। हर जाति, हर देश, हर धर्म ऐसे व्यक्ति उत्पन्न करेगा। इनका निर्माण करना समाज प्रथम कर्तव्य समझेगा। हमारी शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित होगा। उसमें नये आयाम विकसित होंगे। आत्मा की विशालता, उसका सत्य, प्रेम प्रतिबिम्बित होगा। जो शिक्षा मानव को मानसिक चेतना की परिधि पार कर, अतिमानसिक चेतना में उठाने में सहायक सिद्ध होगी, वह वैदिक होगी। उसका मूल सिद्धांत वेदों के ज्ञान के अंतर्गत होगा। यह शिक्षा मानव मन की संकीर्णता के द्वारा उत्पन्न विकृति से सर्वथा स्वतंत्र होगी। केवल उन्हीं के द्वारा प्रदान की जायेगी जो सत्य-द्रष्टा हैं। आत्म-चेतना में निवास जिनकी स्वाभाविक स्थिति है। और ऐसे व्यक्ति हर देश में सुलभ होंगे। उनका निर्माण कर हर देश अपने आपको धन्यता का पात्र अनुभव करेगा।

सामाजिक स्तर पर मनुष्य को दो समस्याओं का हल खोजना कठिन पड़ रहा है। प्रथम है धर्म – जो पृथ्वी पर अनेक नामों से फैले हुए हैं। दूसरी है राजनीति – जिसमें सत्य, धर्म और न्याय ने उसी दिन प्रवेश करना बंद कर दिया था जिस दिन मनुष्य ने वेदों की ओर पीठ फेरी थी। उनकी शिक्षा पर चिंतन करना, उसे आचरण में लाना छोड़ दिया था और बुद्धि के चुंधिया देने वाले प्रकाश में ही जीवन की सब

समस्याओं का हल खोजने का निश्चय किया था – जिस दिन मन को ही मनुष्य समझा था – उसी दिन वह अपने ऊपर, अपनी क्षमताओं पर निर्भर करने लगा और किसी दिव्य शक्ति पर निर्भर करना, उसके प्रभाव में रहना, उसके इंगित के अनुसार जीवन की व्यवस्था करना उसने त्याग दिया। वह पूर्ण रूप से बहिर्मुखी हो गया। अहंकार के द्वारा निर्णय लेना, उसी के चलाये चलना, उसके जीवन का स्वरूप था।

आज अतिमानस संसार में उपलब्ध है। अपनी दीर्घ एवं महान तपस्या के द्वारा श्रीअरविन्द ने इसका अवतरण संभव बनाया है। वह अपनी शक्ति तथा चेतना के द्वारा मानव तथा उसके जीवन के रूपांतरण में संलग्न है। शीघ्र ही मनुष्य देखेगा कि सृष्टि के पीछे एक दिव्य शक्ति है, जो इसे इसके मूल की ओर ले जा रही है। वह मूल दिव्य है और अपनी दिव्यता को यहाँ पदार्थों में, प्राणियों में, उनके जीवन में प्रवाहित करने के लिए संकल्पित है।

संसार में नई चेतनाओं के अवतरण संभव होंगे। उच्च से उच्चतर चेतना अवतरित होती रहेगी। जो मनुष्य को अपने स्वभाव में परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित करेगी। मनुष्य आध्यात्मिक स्तर पर निवास करने का महत्व समझेगा और उसे किसी भी मूल्य पर उपलब्ध करने का प्रयास करेगा।

यह अवश्य होगा। अगर मनुष्य जाति अपना महान तथा अभूतपूर्व सचेतन सहयोग प्रदान करती है तो यह भागीरथ कार्य अपेक्षाकृत सुगमता पूर्वक सुसम्पन्न हो सकेगा।

संसार में कुछ नवीन होने जा रहा है। हमें उसे जानने की चेष्टा करनी चाहिये। पृथ्वी पर एक नई चेतना का अवतरण हुआ है, जो सृष्टि-विकास-क्रम को एक कदम आगे बढ़ायेगी, मानव को देव-मानव में विकसित करेगी। आज मानव जीवन अज्ञान की शक्तियों के प्रभाव में है। चारों ओर मनुष्य का मानसिक या प्राणिक अहंकार ही विशेष रूप से क्रियाशील देखा जा रहा है। उसकी इच्छाओं की पूर्ति और आवेगों की चरितार्थता ही मानव-जीवन का स्वरूप है। सुख-भोग तथा विलासिता की सामग्री अधिक से अधिक जुटाने को ही जीवन की सफलता समझा जा रहा है।

अतिमानसिक चेतना मनुष्य को अपने हाथों में लेगी। उस पर दबाव डालेगी। उसमें उच्च चेतना के प्रति अभीप्सा जगायेगी। उसे निम्न प्रकृति के आकर्षणों से मुक्त करेगी और अंत में अपनी ज्योति तथा दिव्यता में उसका रूपांतरण संभव बनायेगी।

मानव को दिव्य मानव में, पार्थिव जीवन को दिव्य जीवन में रूपांतरित करना श्रीअरविंद के योग का लक्ष्य है। हमें चाहिये कि इस रूपांतर के लिए हृदय में अभीप्सा जगायें। इसके लिए जो भी बलिदान

आवश्यक हो, जो कर्तव्य अनिवार्य हो, उसे करने के लिए तत्पर रहें।

अगर मनुष्य को जातीय स्तर पर किसी भी समस्या का स्थायी समाधान प्राप्त करना है तो उसे आध्यात्मिक चेतना में उठना होगा। आध्यात्मिक सत्य में निवास करना सीखना होगा। जिसका व्यावहारिक रूप है मानव मात्र को सखा समझना, उसे प्रेम करना, व्यवहार करते समय उसके भीतर भागवत उपस्थिति को सम्मान प्रदान करना। पृथ्वी पर मानव-जीवन को सब प्रकार सुखी, सामंजस्यपूर्ण तथा वैभवशाली बनाने के लिए एक ही मार्ग हमारे सम्मुख है।

'If humanity could be spiritualized.' – Sri Aurobindo

हे मानव ! भव-उपवन के स्वर्णिम पुष्प, जाग ! अपने अंतश्चक्षु खोल ! देख एक स्वर्गिक सुरभि से युक्त पवन पृथ्वी के वातावरण में प्रवाहित हो रहा है। एक अलौकिक स्पंदन मानव आत्मा को स्पर्श कर रहा है। जीवन में उत्थान कितना भी कष्टकर प्रतीत हो, फिर भी उसकी प्राप्ति में एक गोपन सुख मानव हृदय अनुभव कर रहा है। जहाँ मन निराश होता है और पथ त्यागने की बात सोचता है, किसी का कारुण्य भरा स्वर, दिव्य मातृत्व से ओत-प्रोत, सुनायी पड़ता है। मानों हमें इंगित करते हुए कह रहा हो– "वत्स ! आगे बढ़ो, साहस संचय करो। रात्रि जितनी गहन है

दिन का सूर्य उतना ही प्रखर होगा। देखो! क्षितिज को घेरती हुई, उस पर अपना उज्ज्वल आँचल फैलाती हुई स्वर्ग-वधू के समान, उषा का शुभ आगमन हो रहा है। सुरीली वंशी की मधुर धुन, एक सुरपुरी-शंख का नाद, प्रकृति को उल्लासित कर रहा है। स्वर्णिम आलोक से भरपूर प्रभात के स्वागत में यह सब दिव्य शक्तियों के द्वारा सजाया जा रहा है। क्या यह अपूर्व भावी अतिमानसिक जाति के आगमन की घोषणा की घड़ी, देव मुहूर्त्त नहीं है, जिसकी युगों से आशा थी !

सुखवीर आर्य
श्रीअरविन्द आश्रम
पांडिचेरी

## आत्म-निवेदन

हे प्रभु ! ऐसी कृपा कर कि मेरा मन तेरी ओर जाये। तेरे चरणों में समाया रहे। तेरे विचारों में व्यस्त रहे। मेरा हृदय तेरी भक्ति से, प्रेम से भरा रहे। मेरा जीवन तेरे प्रकाश का सिंधु हो जिसमें से जो चाहे जितना ग्रहण कर सके। मेरी चेतना यज्ञाग्नि की सुगंध की भांति सर्वत्र फैले। मेरा संकल्प मानव मात्र के लिए सहारा बने। मेरी प्रार्थनाएँ पृथ्वी के हर प्राणी के लिए हों, मेरा हृदय इतना विशाल बना कि मैं मानव मात्र को उसमें धारण कर कर्तव्य पथ पर बढ़ सकूं। समर्पण में सब साथ हों। वरदान में सब भागी बनें। तेरी देन सबमें वितरण करूं। संसार के सब दुख मेरे हों। उन्हें आनंद में रूपांतरित करना, तेरी भेंट चढ़ाना मेरा कर्म हो। तेरे संकल्प की चरितार्थता मेरा, मानव मात्र का जीवन हो, संसार में जीवन का स्वरूप हो। सब उसमें संलग्न रहें। मेरी प्राप्ति सबकी प्राप्ति हो। मेरे संबंध में सब तेरे साथ संबंधित हों। मेरी युक्तता में संसार तेरे साथ युक्त हो। इस दिव्य मुहूर्त में तेरी उपस्थिति से घिरा हुआ, तेरे देखते मैं वही करने जा रहा हूँ जो हमारे पूर्वजों ने, वैदिक ऋषियों ने किया, जो आदर्श उन्होंने हमारे सम्मुख रखा, मैं यह दिव्य चेतना जो तेरी अद्भुत देन है – सब के लिए तेरे चरणों में रख रहा हूँ। सब इसके भागी बनें।

---

## जागरण की वेला

हे मानव ! अंतश्चक्षु खोल ! देख ! दिव्य उषा पृथ्वी के आंगन में अपना स्वर्णिम आंचल फैला रही है। यह सभी भागवत संसिद्धियों से परिपूर्ण है, स्वर्गिक वैभवों से इसके भंडार भरे हैं। कल यह निस्संदेह पृथ्वी को दिव्य संपदाओं से सम्पन्न करने में सफल होगी। अतः उठ। अपने द्वार खोल और इसके स्वागत में दीप संजो। अगर तेरा मन शुद्ध है, हृदय उद्घाटित है, इंद्रियाँ अंतर्मुखी हैं तो इस नई ज्योति को ग्रहण करने में अवश्य समर्थ होगा।

यह मुहूर्त, आज तक के आये मुहूर्तों में विशेष है, श्रेष्ठतम है। कारण, पृथ्वी को अतिमानसिक लोक से पृथक् करनेवाला स्वर्णिम द्वार तोड़ा जा चुका है। जिसके टूटते ही दिव्य शक्तियाँ पृथ्वी के वातावरण में दिखाई दे रही हैं। युग-युग की तपस्या के पश्चात् आज वसुंधरा का हृदय आह्लादित है। दिव्य प्रेम का सिंधु उसके आंगन को डुबा रहा है। तू अपनी आंतरिक प्यास बुझा। अतिमानसिक शक्तियों को समर्पित होकर जीवन यापन कर। तुझे अपने सच्चे स्वरूप की प्राप्ति होगी। तेरा निवास आत्म-सत्य में होगा। प्रभु तेरे होंगे। तू उनका होगा। जीवन-धारा आनंद-सिंधु में प्रवेश पायेगी। सब धन्य होगा।

———

## जीवन-दर्शन

हे प्रभो ! चहुँ ओर दृष्टि घुमाता हूँ। शायद कहीं कोई ज्योति-स्तंभ की भांति मुक्त चेतना में निवास करनेवाला व्यक्ति गोचर हो जाये। कोई हृदय ऐसा मिले जो आवरणहीन हो, जिसमें आत्मा सम्राट के समान मुस्कान बिखेरता हुआ आसीन हो। जिसने अपने यंत्रों को, मन-शरीर-इंद्रियों को अंतस्थ देव की ओर मोड़ा है। उनके स्वभाव में सभी दिव्य गुण उत्पन्न किये हैं। दिव्यता से भरपूर एक ऐसा व्यक्तित्व जो क्षुद्रता से, व्यक्तिगत जीवन की सीमाओं से ऊपर उठ गया हो। जहाँ अहंकार और उसकी प्रकृति में, स्वार्थ पूर्ण कामनाओं में पतन की सभी संभावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

किन्तु अफसोस ! जैसे तीर्थ यात्रा में निकले हुए साधनहीन व्यक्ति का मन स्वप्न में प्रायः अपने परिवार में ही पहुँचता है, ऐसे ही इन झुण्ड के झुण्ड नर-नारियों को देख रहा हूँ। इनकी चेतना अपने कर्तव्य-कर्म को भूल कर बार-बार शरीर के व्यापारों में ही लौटती रहती है। खान-पान, रहन-सहन और इनकी व्यवस्था में, सजावट में ही चक्कर काटती रहती है। कुछ हैं, जिनका स्तर कुछ ऊँचा है, जिनके सम्मुख एक आदर्श है और उसके लिए तप-संयम से भरपूर सात्विक जीवन बिता रहे हैं। किन्तु उनमें भी अहंकार है। वे प्रभु को समर्पित नहीं हैं। सब निर्णय स्वयं लेते हैं। दिशा एवं मार्ग का चुनाव स्वयं करते

हैं। इनकी धारणा है कि ये सब समझते हैं, इन्हें पथ का ज्ञान है। कारण, इन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया है। कैसे इन्हें समझाऊँ कि अमिश्रित उच्चतम समझ तब आती है, जब हृदय का पर्दा हट जाता है। यथार्थ ज्ञान तब प्राप्त होता है जब अहंकार का, क्षुद्र अहंभाव का स्थान आत्मा ग्रहण कर लेती है। जब व्यक्ति निम्न प्रकृति से, मन सहित इंद्रियों की कामनाओं से ऊपर उठ जाता है और ईश्वर के विधान के अनुसार जीवन व्यतीत करता है। तत्पश्चात् ही उसे भीतर-बाहर जीवंत, संक्रिय भागवत उपस्थिति अनुभव होती है और वह उसका चलाया चलता है।

तू इनके हृदय को प्रकाश से भर दे। इनके मनों को ज्योतिर्मय बना दे। इनकी चेतना को पूर्णतः शुद्ध कर दे। इनकी सत्ता इतनी परिष्कृत हो कि उसमें आत्मा सहज भाव से प्रतिबिम्बित हो। जब ये अपने आपको मन, शरीर तथा इंद्रियों से पृथक् देखेंगे तब स्वतः इनमें सही चेतना का, सम्यक् ज्ञान का उदय होगा और इनकी सत्ता में जो मिश्रण है उसके प्रति सचेतन होंगे। इन्हें वह कुंजी प्राप्त होगी जो सब बंद द्वार खोलने में समर्थ है।

हे करुणा-निधान ! मनुष्य सामूहिक रूप में आत्मा के प्रति सचेतन नहीं हैं। उसमें निवास का तो प्रश्न ही नहीं उठता। तेरी कृपा के बिना यह असंभव है। इसे संभव कर। मनुष्य आत्मा में जागें।

---

## दिव्य प्रेम

हे मानव जाग ! अंतश्चेतना का विकास कर ! विचार कर देख ! तू सृष्टि में परमेश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है। वे स्वयं तेरे हृदय में विराजमान हैं। जिस हृदय में परमेश्वर निवास करते हैं, वह उन्हें समर्पित होना ही चाहिये, उसमें उठनेवाला हर भाव दिव्य, प्रभु-प्रेम से, भक्ति से भरा-पूरा होना चाहिये। वहाँ कोई विजातीय तत्व, घृणा अथवा द्वेष भावना जैसी विरोधी वस्तु नहीं रहनी चाहिये।

ऊपर की ओर देख ! भागवत शक्तियों के साथ देवगण युगों से अपलक इसी प्रतीक्षा में हैं कि तू कब जागे और संसार में दिव्य प्रेम का वाहक बने।

चेतना की विशालता में प्रवेश तेरा दूसरा चरण होगा। गहन चिंतन में डूब। इस संसार में घृणा किससे ! द्वेष किससे ! प्रत्येक प्राणी में सच्चे व्यक्तित्व के रूप में एक दिव्य सत्ता विद्यमान है। जो अज्ञान से ज्ञान की ओर यात्रा कर रही है। अज्ञान में अगर कोई भूल करे तो वह क्षम्य होती है। अतः तू दोष न देख ! वरन्, उनका उपचार खोज ! अज्ञानियों को क्षमा करते हुए संसार में प्रेम के मंगलमय मार्ग पर अग्रसर हो। प्रेम, जो केवल देना जानता है और बदले में कुछ नहीं चाहता।

---

## अंतर्दर्शन

अभी ध्यान टूटा है, चेतना केवल आँखों में है। आशा करता हूँ भीतर हृदय गति कर रहा होगा। अभी संकल्प करूंगा तो चेतना अन्य अंगों में फैलेगी। क्या अद्‌भुत वस्तु है आत्मा की आभामयी शांति। कैसी दिव्य अमृत के समान मधुर, मातृ-गोद के समान आनंददायक है भागवत उपस्थिति। कितना सुख है सीमाओं के परे अपने विशाल व्यक्तित्व के अनुभव में। सत्ता के सत्य के समीप होने में। उस पार का कोई भी व्यापार मन के लिए कल्पनातीत है। वह स्थिति वर्णनातीत है जहाँ हम अपने से भिन्न होते हैं। एक दिव्य व्यक्तित्व में अपने आपको देखते हैं। प्रथम विचार जो उठा तुलनात्मक था। कितना अंतर है इस आंतरिक तथा बाह्य प्रदेश में।

आंतरिक व्यक्तित्व की महानता को अनुभव करते ही मेरा विचार मनुष्यों के बाह्य व्यक्तित्व की दीनता पर, उनकी असहायता पर अटका। वे सब जो सच्चे सुख से वंचित हैं, भीतर आनंद के स्रोत से दूर हैं, आत्म-सत्य से अनभिज्ञ हैं, मुक्त चेतना को स्वप्न में भी साकार करने में असमर्थ हैं ; जिन्हें इस दिव्य प्रकाश का भान नहीं, जिन्होंने हृदय में प्रभु-मूर्ति को नहीं देखा, उनकी समीपता के सुख को नहीं चखा, उन चरणों में आलिंगन कर आत्म-विभोर नहीं हुए, वे सब जो सिंहासन से निर्वासित राजा के समान भटक रहे हैं,

पितृहीन बालक के समान, मातृहीन संतान के समान भीतर ही भीतर बिलख रहे हैं– अकारण दुखी हैं, अकारण दीन हैं। अगर वे चाहें, सुखी हो सकते हैं। दीनता के स्थान पर सम्राट पद को प्राप्त कर सकते हैं। जहाँ सब एक अद्वितीय पुरुष का विस्तार है, उसी का संकल्प सर्वोपरि है। सब कुछ आनंदमय है। आनंद का एक अक्षय अंबुधि है।

हे जग-स्वामी ! मेरा जीवन एक स्लेट के समान है जिसपर तू जो चाहे लिख सकता है। तुझे अधिकार है। यह अधिकार तुझे सदा था। मैं ही अज्ञानवश इसे अपना समझता था और जो चाहा लिखता था। यही मेरे कष्टों का कारण था। इसने ही मुझे इतने दिन अज्ञान-कारा में बंद रखा है – जो अहंकार की अंधेरी सीमाओं से घिरी थी।

———

*हे मानव ! अपने विचारों में गंभीर बन। जीवन-मार्गों पर चलने के लिए आत्मा की दृष्टि प्राप्त कर। वस्तुओं का, घटनाओं का गहराई के साथ अवलोकन करना सीख। बाह्य स्वरूप को देखकर कोई निर्णय मत ले। उनके भीतर, उनके पीछे स्थित सत्य को समझने का प्रयास कर। तादात्म्य के द्वारा ही वस्तुओं का सही-सत्य ज्ञान प्राप्त होता है। यही शास्त्रोक्त पद्धति है।*

## प्रार्थना पथ है

जब हमारी चेतना अपने उच्च, ज्योतिर्मय स्तर से नीचे आ जाती है और कामना की भूमि पर हमारे पैर टिकते हैं, जब स्वार्थ रूपी दुर्ग में हम अपने आपको सुरक्षित अनुभव करते हैं, अहंकार की सीमाओं में बंद जीवन हमें खलता नहीं वरन् रुचता है, तब हम कठोर हो जाते हैं।

हृदय की यह कठोरता सब अत्याचारों की जन्मदात्री होती है। वहाँ किसी सात्विक अथवा दिव्य वस्तु के लिए, दैवी गुण के लिए, देवत्व से भरे चरित्र के लिए, आत्मिक व्यवहार के लिए, आंतरिक अभिव्यक्ति के लिए संभावना नहीं होती। हम अहंकार के द्वारा स्वार्थ की जंजीरों में जकड़े जाते हैं। धरती पर अपने लिए, अपने अहं को केंद्र बनाकर जीते हैं। जीवन और कर्मों के पीछे, अहं संतुष्टि ही हमारा लक्ष्य होता है।

"कैसे उभरें इस स्थिति से, कैसे बाहर आयें?"

"प्रार्थना पथ है, श्रद्धा बल है, संकल्प संबल है।"

---

*अतिमानसिक चेतना की ज्योति को ग्रहण करने के लिए मानव बुद्धि को अब तक की चली आ रही धारणाओं से, पूर्वाग्रहों से पूर्णतया मुक्त होना होता है।*

3

## चेतना का परिवर्तन

जैसे-जैसे भागवत-चेतना में हमारा प्रवेश अधिकाधिक संभव होता है, हमारी चेतना में परिवर्तन आता है। हम वस्तुओं के बाह्य रूप के साथ उनके अंदर स्थित भागवत उपस्थिति को महत्व प्रदान करने लगते हैं। अहंकार और आत्मा की प्रेरणा में अंतर करना, उसे समझना हमारे लिए सहज-स्वाभाविक हो जाता है। अपने दृष्टिकोण के साथ दूसरों के दृष्टिकोण को भी मान प्रदान करते हैं। अपने व्यवहार में हम जिस वस्तु का सर्वाधिक ध्यान रखते हैं वह है सत्य की, अंतःस्थित आत्मा के संकल्प की अभिव्यक्ति। अपने प्रति ही नहीं परिवार के साथ भी हमारे व्यवहार का स्वरूप बदल जाता है। हम अपने लिए, परिवार के लिए उतना ही सोचते हैं जितना हमारे अंदर चैत्य-पुरुष उचित समझता है, जिसकी अनुमति प्रदान करता है।

चेतना का परिवर्तन ही आध्यात्मिक जीवन की शर्त है। हमारी चेतना आत्मा के द्वारा कहाँ तक अधिकृत है, यह हमारे अंदर हुए परिवर्तन के द्वारा ही जाना जाता है। ऐसी आध्यात्मिकता जो व्यक्ति के जीवन में न उत्थान प्रदान करती है और न रूपांतर, एकांगी होती है। मानव-जीवन के साथ उसका कोई संबंध नहीं, वह मानव के लिए, संसार के लिए निष्प्रयोजन है, निरुपयोगी है।

---

## सही चुनाव

हमें वह ज्ञान प्राप्त करना है जो बाह्य व्यक्तित्व की वृत्तियों को विजातीय वस्तु दर्शा सके। साथ ही जिस इंद्रिय-सुख रूपी रस में हम आज डूबे हैं, इसकी सारहीनता को, खोखलेपन को समझा सके। जिसमें निवास हमें खलता नहीं, कितने जन्मों से हम रह रहे हैं और अभी भी ऊबे नहीं, निरंतर उसी में डूबे रहना चाहते हैं, उसी लीक पर जीवन-गाड़ी खींचना चाह रहे हैं, हमारे अंदर जागृति नहीं आ रही है, आँखें नहीं खुल रही हैं।

हमें चाहिये कि आत्मा की खोज को अपना विषय चुनें। आत्म-प्राप्ति, आत्म-सत्य में निवास ही सद्वस्तु है। जब तक हम अपने अंदर सच्चे व्यक्तित्व को, सच्चे स्वरूप को प्राप्त नहीं करते, हम धोखे में हैं। जो कर्म, जो विचार हमें उसके समीप ले जाते हैं, ले जाने में सहायक हैं, वे ही उचित हैं, करणीय हैं। शेष सब धोखा है। हमें प्रकृति की शक्तियों के द्वारा, हमारी सत्ता के बाह्य तथा निम्न भागों के द्वारा छला जाता है। कारण, हमारी चेतना परिशुद्ध नहीं है। हमारी बुद्धि का झुकाव विषयों की ओर है, उसमें लोभ-मोह आदि इतनी गहरी जड़ें जमाये हुए हैं कि अगर हमारा संकल्प आंतरिक सत्ता के साथ युक्त नहीं है तो उनकी जड़ें हिलाने में, उन्हें उखाड़ने में सफल नहीं हो सकते।

---

## आत्म-चिंतन

तू शरीर रूपी पिंजरे में विचार करनेवाला प्राणी मात्र नहीं है। अपने सच्चे स्वरूप का अनुसंधान कर। अगर ऐसे ही प्रकृति के हाथ का खिलौना बना रहा, तो कभी भी अपनी सत्ता के सत्य का बोध प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकेगा। अंतरतम सत्य से वंचित रहेगा। अज्ञान से बाहर आना और आत्म-ज्ञान में स्थित होना तेरा लक्ष्य होना चाहिये। आत्म-पद की प्राप्ति के लिए, जो कि तेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है, सब कुछ झोंक दे। आत्म सत्य में उठ। उसे अपने कर्मों का, विचारों का आधार बना। अपने सत्य स्वरूप में जाग और दूसरों को जगाना कर्तव्य रूप में निर्धारित कर। प्रथम तुझे स्वयं उस सत्य में उठना होगा, जिसमें तू दूसरों को उठाना चाहता है। तभी तू दूसरों को सहायता प्रदान करने में समर्थ होगा।

संसार में मानव-चेतना के उत्थान को, उसमें परिवर्तन को लक्ष्य रूप में चुन। आज तक की परम्परागत, रूढ़िगत वस्तुओं में अपना अमूल्य समय नष्ट न कर। अपनी दृष्टि में, विचारों में क्रांति ला। यह प्रयास तेरे लिए भागवत निर्दिष्ट कर्म होगा। व्यक्तिगत स्तर पर, व्यक्तिगत जीवन में आंतरिक जागरण इस क्रांति का परिणाम होगा, जिसके द्वारा प्रचलित संस्कारों से, रूढ़िगत रीतियों से तू ऊपर उठेगा।

नई चेतना की ओर उद्घाटित हो। नई चेतना अतिमानसिक़ चेतना है। यह तेरे चिंतन में नये क्षितिजों का विस्तार करेगी जो नई संभावनाओं से भरपूर होंगे। जहाँ आज तक की चली आ रही मानव-मन की संकीर्णताएँ, मानव-हृदय में घुटन उत्पन्न करनेवाली जाति तथा धर्म संबंधी परिधियाँ प्रवेश नहीं पा सकेंगी। इसके विपरीत, आत्म-एकत्व की चेतना में मानव उठेंगे। एक-दूसरे को भाई समझेंगे। सारी मानवता को एक परिवार के रूप में देखेंगे। संसार को नई दिशा में मोड़ने के लिए, मानव-हृदय को आत्मा की विशालता में उठाने के लिए यह नई चेतना प्रेरित कर रही है। एक नया लक्ष्य हमारे सम्मुख उपस्थित कर रही है। नया लक्ष्य अर्थात् मानव का, उसके जीवन का आत्मा की दिव्यता में रूपांतरण। इस रूपांतर के द्वारा ही यहाँ वस्तुएँ अपने मूल को चरितार्थ करने में सफल होंगी, जो कि सृष्टि में पदार्थों का अन्तर्निहित सत्य है, उनकी भावी नियति है।

---

*काली अंधियारी रात्रि के गर्भ में प्रचण्ड मार्तण्ड छिपा है। वर्तमान अज्ञानमय मानव चेतना के पीछे, उसके भीतर से अतिमानसिक चेतना अपने प्रकटीकरण के लिए जोर लगा रही है। हम किसी भी मूल्य पर इस प्रकटीकरण को संभव बनायेंगे। इस अभियान में सफलता लाभ करने के लिए अपने सर्वस्व की भेंट चढ़ाना हमारे लिए एक सामान्य-सी घटना होगी।*

## शास्त्र-वाचा

अगर हम यह कहते हैं कि भगवान प्राणी मात्र के हृदय में निवास करते हैं तो इससे वस्तु-स्थिति का सही ज्ञान, उसका सही विवरण समझ में नहीं आता। प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्यों निवास करते हैं, उनका मनुष्य के साथ क्या संबंध है? वस्तु-स्थिति को ठीक-ठीक समझने के लिए हमें अपने अनुभव में और आगे जाना है, और ऊँचा उठना है, और अधिक गहरे सत्य को उपलब्ध करना है। उस अनुभूति में हम देखेंगे कि भगवान न केवल हमारे अंदर निवास करते हैं वरन् वे ही जीवन-यापन कर रहे हैं। वे ही जीव-रूप हैं, वे ही प्रकृति-रूप हैं, वे ही हमारी आंतरिक तथा बाह्य सत्ता हैं। वे ही हमारे चारों ओर जगत रूप में व्याप्त हैं। सब कुछ वे ही हैं। मनुष्य उनका अपना स्वरूप, अपनी सृष्टि है। वे उसे प्रेम करते हैं। इसीलिए उसके हृदय में निवास करते हैं।

हमने जो ऊपर कहा वह शास्त्र-वाणी है। परम सत्य की घोषणा है। किन्तु हम ऐसा नहीं देख रहे हैं। हमें संसार कुछ भिन्न दिखायी दे रहा है। वह पदार्थों तथा प्राणियों से भरा एक प्रवाह है जो पंच भूत की रचना है। मैं अपने आपको भी हाड़-मांस से निर्मित एक शरीर के रूप में देख रहा हूँ जिसमें एक मन है, जिसके द्वारा मैं विचार करता हूँ। इसमें इंद्रियाँ हैं जिनके द्वारा मैं जगत के साथ व्यवहार

करता हूँ, पदार्थों का भोग करता हूँ। तब सत्य क्या है, कैसे उसे संसिद्ध किया जाये !

हमें बताया गया है और हमारा अनुभव भी यही कहता है कि हम इतने मात्र नहीं हैं। अगर हम चाहें, ऐसी दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं, जो एक गहन एकाग्रता के द्वारा, इंद्रिय संयम तथा पवित्रता के द्वारा, आंतरिक सत्ता के साथ संपर्क के द्वारा प्राप्त होती है जिसमें वस्तु-स्थिति का सही अवलोकन करने की, वस्तुओं को समग्र रूप में देखने की क्षमता स्वाभाविक है। तब हम देखेंगे कि जिसे हम अपना आप समझते हैं वह केवल हमारी सत्ता का एक आंशिक, सतही भाग है और एक अति विशाल भाग अभी भी हमारी पहुँच के परे है।

---

*जो मन विषयों में रस लेता है, सारहीन वस्तुओं के पीछे दौड़ता है, व्यर्थ की चेष्टाओं में व्यस्त रहता है, जो मन शुद्ध नहीं, शांत नहीं, संयमित नहीं, धैर्यवान नहीं, जो प्रभु में आस्था नहीं रखता, जिसमें भक्ति-भावना नहीं, जीवन-मार्गों पर, घटनाओं में, सचेतन होकर नहीं चलता, वह ऊर्ध्व-चेतना की ओर नहीं खुल सकता। उसमें उच्च प्रेरणाएँ अवतरण नहीं करती। वह हमारी जीवन-नौका को डुबाता है, हम लक्ष्य-सिद्धि से दूर रहते हैं।*

## एक समाधान

सबसे पहले अपनी चेतना को, स्वभाव को, परिवर्तित करना होगा। जो हम आज हैं वही रहते हुए अपने अन्तस्थ आत्मा को कभी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। आत्मा को प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक स्वभाव धारण करना होता है। आज मनुष्य को उसकी मानसिक, प्राणिक या शारीरिक प्रकृति अपने प्रभाव में किये हुए है। वह अपने अहं का यंत्र है। आत्मानुसंधान के मार्ग में हमें संपूर्ण सत्ता को शुद्ध, संयमित करना, इसमें उच्च चेतना के प्रति उद्घाटन लाना होता है। और वह तभी संभव है जब हम चैत्य पुरुष की चेतना में निवास करें। उसके साथ हमारा तादात्म्य सतत हो। अपने आपको इस निम्न प्रकृति से पृथक् करें और साक्षी भाव में स्थित हों। यह पृथक्करण साधना में प्रथम सोपान है। इसके बिना कोई भी निश्चयात्मक प्रगति करना कठिन है। हमें उच्चतर चेतना में निवास करना सीखना होगा, उसी की प्रेरणा के अनुसार जीवन यापन करना होगा। और वह तब तक असंभव है जब तक हम अपनी निम्न प्रकृति में और इसके विषयों में आसक्त हैं।

मानव जाति की जो वर्तमान समस्याएँ हैं उन सबका एक ही समाधान है, मनुष्य को अपने अन्तस्थ आत्मा को पाना होगा उसके आदेशानुसार कर्म करना होगा, उसी के संकल्प के अनुसार जीवन पथ पर चलना होगा। जब तक

यह योग्यता प्राप्त न हो, हमें अधिक से अधिक लगन के साथ साधन-मार्ग पर अग्रसर होना है। अपनी बुद्धि के अनुसार, अपनी सत्ता के उच्चतम स्तर पर निवास सतत बनाना है। व्यक्तित्व में निम्नगामी वृत्तियों के प्रति वर्जन का भाव अपनाना है तथा उच्च चेतनाओं के अवतरणों के लिए अभीप्सा को तीव्रतर बनाना है। हमें बताया गया है – समर्पण का भाव अपनाने से सब सुलभ हो जाता है। पथ मिलता है। भीतर पथ-प्रदर्शक द्वार खोल मुस्काता है। तब तक साधन-मार्ग पर पूर्ण सच्चाई के साथ चलते रहना, अंतस्थ प्रभु को समर्पित रहना, उसी के चलाये चलना, और दूसरी ओर – अहंशून्यता, इंद्रिय संयम, इच्छाओं का अभाव हमारे जीवन का स्वरूप होगा।

---

*सृष्टि में सब आकर्षणों का केन्द्र आत्मा है। सब कुछ उसी से मूल्यवान है। हमारी इच्छाओं में लक्षित जो सुख है, जिसके लिए हम पुरुषार्थ करते हैं, हर संभव प्रयास करने को तैयार रहते हैं, उन सब वस्तुओं के पीछे, दूर उनके भीतर गहराई में यही हमारे आकर्षणों का केन्द्र है। बाह्य व्यक्तित्व में निवास के कारण हमारी पहुँच सीधी नहीं है। हम सचेतन नहीं। अतः लक्षित वस्तु हम से छूट जाती है और मणि को प्राप्त न कर हम मंजूषा को गले लगाते हैं।*

## मनन करें

दुखी, अभावात्मक जीवन सृष्टि विधान के विपरीत है, फिर भी हमें सुखी जीवन की चाह को, जो हमारे अंदर गहरी जड़ जमाये हुए है, सोच-समझकर ही प्रश्रय प्रदान करना चाहिये। सुखपूर्वक जीवन बिताना मानव-जीवन का लक्ष्य नहीं है। मानव आत्मा सृष्टि में सुख पाने, सुख के सपने सजाने नहीं आती। पृथ्वी पर उसके अवतरण का एक ही प्रयोजन है, वह है आत्म-विकास अर्थात् अपने विकास में उत्तरोत्तर बर्द्धमान होते हुए, अपने मूल उद्‌गम के साथ जो कि एक दिव्य तत्व है, तादात्म्य लाभ करना। इस तादात्म्य के द्वारा वह भागवत संकल्प के प्रति सचेतन होती है और उसकी अभिव्यक्ति को जीवन-लक्ष्य के रूप में चुनती है। जीवन में भागवत संकल्प की अभिव्यक्ति ही पृथ्वी पर अवतरित आत्माओं का अंतर्निहित सत्य, उनका एक मात्र लक्ष्य है।

जिन उपायों के द्वारा हम बाह्य जीवन में प्रगति करते हैं, उन्हीं उपायों को अपना कर आन्तरिक जीवन में प्रगति नहीं कर सकते। जिन चालाकियों तथा काली करतूतों के द्वारा हम समाज में एक ऊँचा स्थान प्राप्त कर लेते हैं उन्हीं करतूतों के द्वारा हम अपने हृदय की गहराई में, दिव्यता से भरे वातावरण में प्रवेश नहीं पा सकते। पापमय, कुत्सित कर्मों को करते हुए, अनाचार तथा दुराचार का त्याग किये

बिना जीवन, कर्म तथा विचारों में सत्यता, पवित्रता, दयालुता तथा परोपकार की भावना को आधार बनाये बिना कोई भी व्यक्ति हृदय के आवरण को नहीं हटा सकता और हृदय के आवरणहीन हुए बिना जीवन एक भटकन है, धोखा है। हम आंतरिक प्रेरणा से, आदेश से, पथ-प्रदर्शन से वंचित रहते हैं। अंधकार में निमज्जन हमारी नियति है। हम उन गर्त्तों में गिरते हैं जो प्रकाश से रहित हैं। आत्म-उद्धार रूपी सूर्य जहाँ सदा अस्त रहता है। ऐसे व्यक्तियों के विषय में ही शास्त्रों में कहा गया है– माया में निमज्जित आत्मा।

---

*शास्त्रों के अनुसार बुद्धिमान मनुष्य उन्हें बताया गया है जो उस सुख को सच्चा सुख नहीं मानते जिसमें इंद्रियाँ सुख पाती हैं। उस प्रेम को सच्चा, दिव्य नहीं मानते जिसमें केवल प्राणिक सत्ता या हमारी सतही यांत्रिक सत्ता भाग लेती है। जीवन में उन उद्देश्यों की पूर्ति को उच्च स्तर की अभिव्यक्ति नहीं मानते जो हमारे मन के द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। उन कर्मों को शुभ-श्रेयस्कर नहीं मानते जो हमारे अहंकार के द्वारा चुने जाते हैं। बुद्धिमान वही है जो बाह्य सत्ता से पीछे हटकर, गहराई में डूबता है और वहाँ ईश्वर की इच्छा का पता लगाता है और उसकी चरितार्थता को ही लक्ष्य रूप में चुनता, जीवन को उसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप प्रदान करता है।*

## विशालता में उठें

अगर हमारा निवास आत्म-सत्य में है– हमारी समता इतनी पूर्ण, इतनी विशाल है कि हम अन्य धर्मावलम्बियों को भी गले लगा सकें, उनके साथ व्यवहार में प्रेम तथा भ्रातृ-भाव को बनाये रख सकें, उनके अंदर व्यथित अंतर्सत्ता की दर्द-भरी पुकार हमें सुनायी पड़े, उन्हें सुखी करने के लिए, उनका चेतना-स्तर ऊँचा उठाने के लिए अपना सब कुछ बलिदान करने को उद्यत हों, अगर हमारा हृदय इतना आवरणहीन हो कि अज्ञानियों को, पतितों को देखते ही उनके उद्धार के लिए वह प्रभु को पुकार उठे, अपनी आत्मा के सामान उनके आत्म-कल्याण के लिए भी प्रार्थना करे, तो हम कह सकते हैं कि हमने पृथ्वी पर मानव-जीवन के सही अर्थ को समझा है और उसे चरितार्थ करने का सफल प्रयास कर रहे हैं। अहंमयी मानव-चेतना-परिधि का अतिक्रमण किया है। हृदय-स्थित आत्मा की ज्योति आवरण को चीर कर हमारे मन-बुद्धि पर पड़ने लगी है। विवेक-प्रदीप प्रज्ज्वलित हो उठा है। हमारे विचारों में अहंकार का स्थान उच्च्व चेतना ग्रहण कर चुकी है। अतिमानवता में हमारा प्रवेश अब केवल एक संभावना ही नहीं रह गया, उसकी संसिद्धि हमारे द्वार पर है।

———

## आत्म-स्थित

जो व्यक्ति आत्म- स्थित है, अर्थात् मन को चारों ओर से हटाकर, आत्मा में स्थिर कर चुका है, जीवन में आत्मा को ही सबसे अधिक महत्व प्रदान करता है, जिसका चित्त एकाग्र है, ध्यान सदा इसी ओर लगा रहता है कि उसके अन्तस्थ प्रभु की क्या इच्छा है, उनका इंगित किस ओर है, उनके आदेश की पूर्ति में ही जो पूर्ण एकाग्रता के साथ संलग्न रहता है, उसके विषय में कौन क्या कह रहा है, उसकी निंदा कर रहा है या स्तुति, उसके कार्य में सहायता करने की योजना बना रहा है अथवा बाधा डालने की – इन सब बातों की ओर जिसका ध्यान नहीं जाता, जो निंदा से नहीं डरता और हानि होने से विचलित नहीं होता, जो समर्पित है और प्रभु में जिसकी पूर्ण श्रद्धा है, जिसे विश्वास है कि उसके साथ जो भी घटित होगा वह सदा अच्छा ही होगा, ऐसे व्यक्ति-विशेष को भागवत उपस्थिति की अनुभूति प्राप्त होती है, आत्म-सचेतनता प्रदान की जाती है। मानव मात्र का मंगल, सत्य की विजय, धरती पर अज्ञान और अंधकार से भरे जीवन के स्थान पर एक ऊँचे अर्थात् आध्यात्मिक जीवन को लाने का प्रयास, इन्हीं कर्तव्यों को वह अपना जीवन समझता है। इनकी सफलता में ही वह अपने जीवन की सार्थकता मानता है।

---

## धार्मिकता पर्याप्त नहीं

पूर्ण आत्मिक विकास के लिए धार्मिक जीवन पर्याप्त नहीं। हमें आध्यात्मिक जीवन जींना होगा। आध्यात्मिक जीवन की हमारी परिभाषा भी वैदिक है जो मानव जीवन के हर क्षेत्र को इसलिए स्वीकार करती है कि वह अपने मूल स्वरूप में आत्मा की अभिव्यक्ति है। किन्तु मानव चेतना अभी इतनी तैयार नहीं है कि वह अंतस्थ आत्मा की दिव्यता को जीवन में– विचार, भाव, कर्मों में चरितार्थ करने में समर्थ हो, उसका जीवन आत्मा की सीधी अभिव्यक्ति हो। अतः हम संपूर्ण वस्तु को एक नया मोड़ प्रदान कर रहे हैं, जिससे कि मानव चेतना प्राचीन ऋषियों के भावों को पकड़ सके, उन्हें ग्रहण करने की क्षमता से सम्पन्न हो; उसका चेतना-स्तर वही हो जिस चेतना-स्तर पर उठकर हमारे पूर्वज पृथ्वी के वातावरण को मधुमय बनाने का, मानव जीवन में आत्मा की दिव्यता प्रवाहित करने का और फलस्वरूप इसे स्वर्ग से भी अधिक सुखमय, दिव्य सम्पदाओं से भरपूर देखने का संकल्प हृदय में पोषित करते थे। अगर मनुष्य जाति अतिमानस की ओर उद्घाटित होती है, सहयोग प्रदान करती है तो यह कठिन कार्य सरल हो सकता है। मनुष्य के जीवन का स्तर ऊँचा, आध्यात्मिक चेतना से ओत-प्रोत हो सकता है।

---

## शास्त्र-वचन

शास्त्रों के अनुसार मनुष्यों में कुछ देव-तुल्य भी होते हैं, वे भागवत स्वभाव से सम्पन्न होते हैं, आत्मा के सभी दिव्य गुण उनमें विद्यमान होते हैं। श्रेष्ठ आचरण से युक्त मनुष्य देव-तुल्य माना गया है। इनका स्वभाव स्वार्थपरता से मुक्त होता है। इनके अंदर ही अतिमानवता में उठने की संभावना विद्यमान होती है। इन्हें ही भागवत चेतना चुनती है और पृथ्वी पर अपना यंत्र बनाती है। इनके द्वारा ही अपने विश्व-व्यापी कर्म को, जिसका व्यावहारिक रूप मानव-चेतना तथा उसके जीवन-स्तर का एक उच्च, दिव्य, अतिमानसिक स्तर में उत्थान करना है, पूर्ण करती है। ये ही आगामी स्वर्णिम युग के पुरोधा होंगे, अतिमानवों की प्रथम पंक्ति में खड़े होने का सौभाग्य इन्हें ही प्राप्त होगा।

आचरण श्रेष्ठ होने से ही जीवन-स्तर ऊँचा उठता है। आत्म-संयम के द्वारा हम पशु-मिश्रित मानव जीवन से ऊपर उठते हैं। द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त कर कोई भी शांति लाभ कर सकता है। अहंकार और कामनाओं से ऊपर उठ कर हम अंतर्ज्योति के दर्शन करते हैं। हमारे हृदय पर जो आवरण है, वह इन्हीं से निर्मित है। मानव-संकल्प और पुरुषार्थ जब भागवत-कृपा के साथ युक्त हो जाते हैं, कुछ भी असंभव नहीं रहता। जिस व्यक्ति की दृष्टि ऊर्ध्वमुखी हो गयी है वह आत्म-सत्य में निवास करता है। अंतर्मुख होकर हम

अंतर्वाणी सुनते हैं। जब हम समर्पित जीवन जीते हैं, प्रभु-आदेश-पालन हमारे जीवन का स्वरूप हो जाता है। यही पथ है। चरम उपलब्धि का द्वार इसी भाव में खुलता है। यह सिद्धि का उच्चतम स्वरूप है।

---

*सत्ता में अधिमानस के अवतरण के फलस्वरूप हमारी मानसिक तथा प्राणिक चेतना के साथ हमारा भौतिक मन, शारीरिक चेतना भी ज्योतिर्मय हो जाती है। उसका निवास आत्म-सत्य में स्थायी हो जाता है। निम्न प्रकृति शुद्ध हो जाती है। हमारे रोम-रोम में भागवत संकल्प गुंजायमान रहता है। सत्ता के सारे व्यापार उसी से चलते हैं।*

*अतिमानस के अवतरण को ग्रहण करने के पश्चात् शरीर आत्मा की दिव्यता में, उसकी ज्योति में रूपांतरित हो जाता है, एक ठोस वस्तु नहीं रहता। पूर्णतः प्रकाश से निर्मित होता है। आंतरिक व्यक्तित्व के ऊपर एक ज्योतिर्मय वस्त्र के रूप में दिखायी देता है जो आभामय, देदीप्यमान, दिव्य ज्योति-पुंज के समान चमकता है। हम उसे भौतिक चक्षुओं से देख सकते हैं।*

## धरती, धर्म से

हे धर्म ! देख रही हूँ मानव-चेतना-स्तर के साथ-साथ तुम्हारे स्वरूप में धीरे-धीरे विकृति बढ़ रही है। तुम्हारी उपस्थिति भयाकुल होती जा रही है। मेरे आँगन में जो स्वरूप तुम ग्रहण करते जा रहे हो, वह शोचनीय है। तुम्हारे अंगों से विभीषिका प्रकट हो रही है। ईर्षा-द्वेष की गंध आ रही है। विषैले प्रकंपन वातावरण में व्याप्त हो रहे हैं। यह इतना भयंकर, इतना पैशाचिक हो उठा है कि मैं तुम्हें यह कहने के लिए बाध्य हो रही हूँ कि या तो तुम अपने वर्तमान स्वरूप में परिवर्तन लाओ अन्यथा मेरे आँगन से चले जाओ। कम से कम तुम्हारी अनुपस्थिति में मनुष्य व्यर्थ की पारस्परिक कलह से तो दूर रहेंगे। कारण, देखती हूँ जैसे-जैसे मनुष्य तुम्हारे प्रभाव में अधिकाधिक प्रवेश करता है तुम उसकी आत्मा को अपने अंदर बंद कर लेते हो। वह तुमसे परे किसी सर्वव्यापक ईश्वर की, अंतर्यामी प्रभु की, किसी दिव्य अस्तित्व की – जो कि सृष्टि में विद्यमान सभी पदार्थों का उद्‌गम है – परिकल्पना करने में असमर्थ हो जाता है। वह परमात्मा को पीछे, पहले उसके, तथाकथित पैगम्बरों को, मसीहों को, अवतारों को, देवी-देवताओं को पूजना, उन्हें प्रसन्न करना चाहता है। जीवन-मार्गों पर उनका आशीर्वाद खोजता है। तुम्हारे भक्त अपनी आत्मा से तथा ईश्वर से अधिक तुमको मानते हैं, तुम्हें चाहते हैं। उनका

समर्पण सृष्टिकर्त्ता को नहीं पैगम्बरों को होता है। उनके लिए उनका धर्म ही सत्य है, वही सब कुछ है, उससे बाहर अन्य धर्म कलुषित हैं, घृणित हैं, मिथ्या हैं। कहना न होगा कि हर धार्मिक व्यक्ति के लिए दूसरों का धर्म एक सारहीन सिलसिला है, अंधता है, निर्बुद्धता है। तुम्हें मानकर मनुष्य यही सीख रहा है। जितना अधिक कोई व्यक्ति धार्मिक होता है – जैसे ही धर्म की पूरी प्रतिमा उसके हृदय-पट पर छा जाती है – वह अपने आपमें बंद हो जाता है और उसके अपने पैगम्बर की छवि के सिवाय अन्य किसी छवि को देखना पसंद नहीं करता। वरन् यहाँ तक कि उससे घृणा करता है। तुम्हारे प्रभाव में आते ही पहली वस्तु जो मनुष्य सीखता है वह है "मेरा धर्म ही सही और सच्चा है, शेष सब धर्म मिथ्या हैं, अधर्म की गलियाँ हैं, भगवान के पास पहुँचने की आसुरिक विधियाँ हैं।" इसीलिए आज मैं इस निर्णय पर पहुँची हूँ कि तुमसे स्पष्ट कह दूँ कि जैसी क्षति मुझे तुम्हारे द्वारा हुई है वैसी और किसी अन्य क्षेत्र में, अन्य अभिप्राय को लेकर नहीं हुई। मेरे देखते-देखते मेरे सीने पर मेरे शिशुओं का जितना रक्तपात तुम्हारे कारण हुआ, जितने अमानुषिक व्यवहार किये गये, उतने अन्य किसी कारण से कभी नहीं हुए।

हे धर्म ! कहने को तुम दयालु हो, प्रेम का पाठ पढ़ाते हो, परोपकार, सहानुभूति, अहिंसा, आदि तुम्हारी सत्ता के अंग हैं, तुम इनकी प्रतिमा हो, ये सब तुम्हारी आत्मा की अभिव्यक्तियाँ हैं, लेकिन व्यवहार में ठीक इसके विपरीत है।

तुम्हें स्वीकार करते ही व्यक्ति कट्टर और कठोर हो जाता है। कठोर होते ही उसकी विवेक शक्ति पर पर्दा पड़ जाता है। हिंसा तथा अहिंसा में उसके लिए कोई भेद नहीं रहता। उन कर्मों को करने से भी पीछे नहीं हटता जिन्हें शास्त्रों में निन्दित, घृणित, महापाप कहा है। वह प्रेम तथा दयालुता को, भ्रातृत्व की भावना को एक ओर रखकर, मनुष्य में स्थित भागवत उपस्थिति की उपेक्षा कर केवल तुम्हारी प्रतिमा को लेकर अपने आपमें, अपने सिद्धांत में बंद हो जाता है। इस प्रतिमा का जो स्वरूप उसे उसके अध्यक्षों ने बताया, उसके चारों ओर ही वह अपना जीवन, कर्म, विचार, भावनाएँ एकत्र कर लेता है। वह वही हो जाता है, उतना ही देख पाता है। उसके लिए उसका धर्म ही एकमात्र सच्चा तथा सर्वोच्च धर्म है और उसके सहधर्मी ही सही मनुष्य हैं। शेष संपूर्ण मानवता को वह अधम, निम्न-स्तरीय जाति समझता है। जिनके उद्धार का समय अभी नहीं आया है। कारण, उसकी दृष्टि में किसी मनुष्य के उद्धार का समय तब आता है जब वह उसके धर्म को, उसके मसीहा को स्वीकार कर लेता है।

एक आदर्श को, अभीप्सा को लेकर मनुष्य धर्म की शरण ग्रहण करता है, एक आस्था को लेकर वह धर्म रूप सीढ़ी पर चढ़ने को प्रेरित होता है, उसका हृदय आश्वस्त है कि धर्म रूप मार्ग पर आरूढ़ होकर हम सब एकत्व के सूत्र में बंधेंगे, परस्पर प्रेम करेंगे, एक दूसरे की सहायता प्राप्त

होगी, किसी से किसी को क्षति पहुँचने का भय नहीं होगा। सब निश्चिंतता लाभ करेंगे। सुख पूर्वक असंभव को संभव बनाते हुए, असीम प्रगति पथ पर अग्रसर होंगे। अपनी प्यारी वसुंधरा को स्वर्ग-सुखों से सजायेंगे। ये ही वे मीठे सपने हैं, सुनहरे मनोरथ हैं जिनकी सिद्धि हेतु, जिन्हें मूर्त रूप प्रदान करने के लिए मनुष्य धर्म में प्रवृत्त होता है। वास्तव में मनुष्य उसके हृदय में छिपी किसी कामना की पूर्ति के लिए ही धर्म की शरण ग्रहण करता है। कामना का होना अपने आपमें कोई दोष नहीं है। कारण, जब तक व्यक्ति मन-परिधि का अतिक्रमण नहीं करता कामनाएँ रहती ही हैं। भले ही उसे कहा गया है कि उसकी कामनाओं का स्वरूप, उनका स्तर उच्च हो, विशाल हो, दिव्य हो।

अंत में आकर आज का मानव इस निष्कर्ष पर पहुँचा है "धर्म हमें जो प्रदान कर सकता था वह कर चुका। हम उसे उसके पूर्ण स्वरूप में देख चुके। हमें जो घटित हुआ वह दुहराना नहीं है।" आज एक नई चेतना का जन्म वह अपने अंदर अनुभव कर रहा है। एक नई दिशा, एक नया मार्ग अपने सम्मुख प्रशस्त देख रहा है। उसके हृदय में नई जागृति का प्रादुर्भाव हुआ है, एक नई अभीप्सा आंतरिक सत्य की ओर उठ रही है। वह अपने पिता का दर्शन चाहता है। जिसने उसे सृष्ट किया है उस परमात्मा को समर्पित होना, समर्पित रहते हुए जीवन यापन करना चाहता है। वह संसार में आत्मा की शांति को, उसकी दिव्य चेतना को

प्रवाहित करना, उसकी दिव्यता में यहाँ मानव जीवन को रूपांतरित करना चाहता है। उससे जरा भी न्यून, निम्न स्तर की वस्तु उसे स्वीकार नहीं है। उसका नारा है – "हम परमात्मा की सृष्टि हैं, उनके अंश हैं, अतः उन्हें पाना उनके लिए जीना चाहते हैं। अपने तथा उनके बीच में किसी शक्ति को, पैगम्बर को, उसकी वाणी को, लाना नहीं चाहते। हम जग-स्रष्टा के साथ सीधा संबंध स्थापित करना चाहते हैं। हाँ, अगर कोई ऐसा दर्शन सुलभ हो – जो हमारे सम्मुख परम एकत्व का पथ प्रशस्त करता हो, उसकी प्राप्ति संभव बनाता हो, तो हम अवश्य स्वीकार करेंगे, करने को उद्यत रहेंगे। लेकिन भूतकाल के कड़ुवे अनुभवों पर दृष्टिपात् करने के पश्चात् हम इतना अवश्य कहेंगे कि हम ऐसी कोई शिक्षा, कोई शास्त्र स्वीकार नहीं करेंगे जो हमारी चेतना को सीमित करता हो। हमें सांप्रदायिकता सिखाता हो। विश्व चेतना में उत्थान की संभावना से वंचित करता हो। सारी वसुधा, सारी मानवता एक परिवार है इस सत्य से दूर रखता हो।"

हे धर्म ! यह सच है कि एक दिन मुझे तुम्हारी आवश्यकता थी। तुमने मानव के चेतना-स्तर को उठाने में सहायता की थी। उसे शिक्षित करने में, आचार का पाठ पढ़ाने में, उसके अंदर सही मनुष्यत्व जगाने में तुम्हारा हाथ था। किंतु, अब मैं देख रही हूँ कि तुमने मनुष्य की आत्मा को पूर्णतः जकड़ लिया है। वह भगवान को पाना, उनसे

सीधा संपर्क स्थापित करना भूल चुका है। वह धार्मिकता की परिधि में बंद हो गया है। तुमने एक सनातन सत्य को धाराओं में विभाजित किया है, एक सनातन धारा को कई रूपों में खंडित कर, उसे उसके अंतर्निहित सत्य से दूर कर दिया है। यह एक दुखद विषय है। अगर धर्मों की दीवारें ऐसे ही बढ़ती गयीं, और ऊँची होती गयीं, तो मानव जाति परस्पर प्रेम तथा भ्रातृ-भाव की भावना को पूर्ण रूप से खो बैठेगी। मनुष्य उदार होने के स्थान पर क्रूर हो उठेंगे। मैं अंत में निराश होकर, दग्ध एवं संतप्त हृदय लेकर प्रभु की ओर मुड़ी हूँ, उनकी शरण ग्रहण की है। मैं उनके चरणों में झुकी प्रार्थना कर रही हूँ कि वे मेरे शिशुओं को सुबुद्धि प्रदान करें, उनकी चेतना को विशाल बनायें, उनमें विवेक जगायें, जिससे कि सब पृथक् धर्म तथा जाति को भूलकर आत्मा के एकत्व में उठें। एक-दूसरे के लिए जीना सीखें, दूसरों को सुखी देखकर सुख अनुभव करें।

अतः हे देवता ! परिस्थिति को समझो। तुम अपनी आत्मा में दिव्य हो, प्रेम, दया, परोपकार तुम्हारे विग्रह से झरते हैं, दूसरों के लिए सर्वस्व की आहुति देना, सब प्रकार के कष्ट सहना, सब समय बलिदानों के लिए उद्यत रहना, तुम्हारा स्वभाव है। किंतु इससे पहले कि मनुष्य तुम्हें समझे, तुम्हारे स्वरूप को ठीक-ठीक पहचाने, वह तुम्हें स्वीकार करते ही सीमाओं मे बंद हो जाता है। तुम्हारे स्वरूप में, तुम्हारी सत्ता में भेद खड़े करता है। तुम्हारे किसी

एक अंग को अपनाकर संतुष्ट हो जाता है। और दूसरे धर्मावलंबियों से द्वेष करता है। अगर दूसरे उस जगदीश्वर के समीप भिन्न प्रकार से अपना आत्म-निवेदन करते हैं, भिन्न मार्ग से उसके समीप पहुँचना चाहते हैं, जीवन में उसके आशीर्वाद को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, तो वे सब उनसे द्वेष करते हैं, जो अपने आपको एक महान धार्मिक कहते हैं। मानों उस जगतपिता के पास पहुँचने का एक ही मार्ग है जो उनके द्वारा अपनाया गया है, और दूसरा नहीं हो सकता।

वास्तव में हे धर्म ! तुम एक मार्ग हो। एक सीढ़ी हो। अधिक से अधिक एक मार्गदर्शक हो। तुम गंतव्य नहीं हो। मनुष्य की आत्मा जिस अमृत-सिंधु की प्यासी है, जिसे वह जाने या अनजाने में खोज रही है, जहाँ वह अपनी सत्ता की पूर्णता लाभ करेगी, उस दिव्य शक्ति, ज्योति और आनंद का अक्षय अम्बुधि तुम प्रदान नहीं कर सकते, वह तुम्हारी क्षमता के बाहर है।

हे धर्म ! तुम देख रहे हो ये सब, जो अपने आपको धर्माधिकारी घोषित करते हैं मानव-हृदय को अपनी चारदीवारी में बंद कर उसे अन्य किसी दिशा में सोचने से वंचित रखते हैं। ये चाहते हैं कि मानव किसी असीम चेतना में उड़ान न भरे। अगर कोई व्यक्ति इनके पास आता है और उस अनंत सत्ता के विषय में कुछ अधिक जानना चाहता है तो ये कहते हैं "वह सब अपरोक्ष है। मन के लिए अचिंत्य

है, वर्णनातीत है। अतः इस धरती पर तुम्हारे लिए धर्म ही सब कुछ है। उसके द्वारा ही तुम सर्वोच्च स्वर्ग प्राप्त करोगे।" इस प्रकार ये मनुष्य की बुद्धि को छलते हैं, उसका विवेक हरण करते हैं। निस्संदेह मनुष्य इतना मात्र नहीं है। उसके भीतर आत्मा इनकी सब चालें परखती-पहचानती है। लेकिन अफसोस ! इनकी मोहक वाणी उसके सरल हृदय को छल लेती है, उस पर पूर्णतः छा जाती है। असहाय-सा धर्म-भीरु मानव प्राणी इससे परे कुछ सोचने-विचारने की स्थिति में नहीं उठ पाता। इनके जालों को काटने में उसकी भोली बुद्धि अपने आपको असमर्थ पाती है। स्वर्ग सुख-वैभवों के सुनहरे मनोरथ उसे मोहित कर लेते हैं और इस मोहिनी माया से पार जाना, उसके लिए असंभव हो जाता है। अंततोगत्वा, धार्मिकता की इस कारा को वह जीवन का अंग मान लेता है और इसमें सुखी संतुष्ट होकर जीने को ही लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लेता है।

और सुनो, संप्रदायों के ये सब अधिष्ठाता अपने अपने ढंग से अपने व्यक्तित्व में, अपनी धारणाओं में बंद हैं। अपनी-अपनी लीक पर बंधे हैं। इनमें आत्मा स्वतंत्र नहीं है। ये परमात्मा से सीधी प्रेरणा प्राप्त करने में समर्थ नहीं हैं। इनके मन, बुद्धि, हृदय का हर भाव, हर विचार इनके धर्म-प्रवर्तक से प्रभावित रहता है। इनके आदर्श उसकी बुद्धि की उपज हैं। इनके लिए उसकी वाणी ही अंतिम शास्त्र है, ज्ञान की पराकाष्ठा है। अगर ये पुरुषार्थ करें और अपनी

सीमित चेतना का अतिक्रमण कर अनादि शास्त्रों का अध्ययन करें, जैसा कि इनके पूर्वज, ऋषि-मुनि करते थे, तो देखेंगे कि ऋचाओं की, मंत्रों की आत्मा से सीधा संपर्क होना संभव है। हृदय का पर्दा हट सकता है। अंतस्थ देव की वाणी सुनी जा सकती है। उसके बाद ही इनकी चेतना ज्योतिर्मय होगी। ये संकीर्णताओं से ऊपर उठेंगे। आत्मा की मुक्तावस्था में विचरण करना इनके लिए संभव होगा। संसार का मार्गदर्शन करने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त होगा। प्रभु-प्रसन्नता के भागी बनेंगे।

हे धर्म ! मेरे अंतिम कथन पर ध्यान दो। और उसके पश्चात् जैसा उचित लगे वैसा करो। चाहे तुम मंदिरों, मस्जिदों तथा गिरजाघरों से धरती को ढक दो, किन्तु जब तक मनुष्य अपने अंदर मंदिर का निर्माण नहीं करेगा, हृदय-मंदिर को स्वच्छ, निर्मल नहीं बनायेगा, उसकी समस्या बनी रहेगी। उसकी समस्या उसका अहंकार है। और जब तक यह समर्मित नहीं होगा, इसका स्थान आत्मा ग्रहण नहीं करेगा, उसे आत्मिक शांति प्राप्त नहीं होगी। उसका जीवन नाना संतापों से भरपूर रहेगा।

संसार में एक नई चेतना का अवतरण हुआ है। जिसकी सहायता से मानव जाति अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में समर्थ होगी। मानव हृदय आलोकित होगा। उसके चिंतन में विशालता आयेगी। एक नई प्रेरणा से सब प्रेरित होंगे। मानव मात्र बंधुत्व में बंधेगा। अपने हृदय में सबको स्थान

प्रदान करेगा। दूसरों की उन्नति में सहायक होना अपना प्रथम कर्तव्य मानेगा। सब प्रकार की क्षुद्रता का अतिक्रमण करेगा। संकीर्णता तथा स्वार्थपरता उसे स्पर्श नहीं करेंगी। आत्मा की विशालता में निवास सबके लिए सुख का आधार होगा।

हे धर्म ! सुनो ! एक अति सुन्दर, महिमामय, स्वर्ग के समान सुखद समय आ रहा है। उसके पदचापों की मधुर ध्वनि श्रवण पथ को उल्लासित कर रही है। यह एक महान, अभूतपूर्व रूपांतर की वेला है। आज तक जिनका आगमन हुआ उन सब मुहूर्त्तों में यह विशेष है। मैं अपने शिशुओं के साथ इसमें प्रवेश कर रही हूँ। एक नये आलोक में मानव जीवन मार्गों पर अग्रसर होगा। उसके विचार तथा कर्म सत्य से ओत-प्रोत होंगे। मानव मानवता लांघेगा। अपने स्वभाव का, व्यक्तित्व का अतिक्रमण कर अतिमानवीय व्यक्तित्व में, आत्मा के एकत्व में उठेगा। दिव्यता से भरपूर जीवन उसकी नियति होगी।

---

*सनातन धर्म सीमित नहीं है। अपने भाव में, क्षेत्र में असीम है। उसकी व्यापकता, विशालता, सृष्टि के सब पदार्थों को, प्राणियों को, तत्वों को आलिंगन करती है। सनातन धर्म सब में समान रूप से प्रभु को देखता है, पदार्थ मात्र को उनकी अभिव्यक्ति मानता है।*

## कारण भीतर खोजें

हमारे कर्म उत्तम हैं। स्वाध्याय, ध्यान, भजन, योगाभ्यास करते हैं। हमारा आचरण भी श्रेष्ठ है। परोपकार, याग-यज्ञ आदि भी करते हैं। इतना सब करने के पश्चात् भी हमने न अभी तक आत्म-दर्शन किया और न परमात्मा का साक्षात्कार। क्या हमने कभी सोचा है कि इसका कारण क्या है। और अगर कोई कारण है तो वह कहाँ है। वह ग्रंथि कहाँ हो सकती है जिसके कारण अंतर्द्वार बंद है !

आयें ! हम सब सत्य के अन्वेषक, आत्म-दर्शन के अभीप्सु, साक्षात्कार के अभिलाषी मिलकर इस विषय पर, जो कि आज हमारी गंभीर समस्या है, विचार करें। अवश्य समस्या का कारण हमारे अंदर होना चाहिये। हमारा अहंकार एक ग्रंथि का रूप लेकर हमारे स्वभाव में बैठा है। हमने अहंकार का त्याग नहीं किया। भले ही वह शिक्षित है, उसका रूप सात्त्विक है। वह शुद्ध है। किसी अनुचित कर्म के लिए हमें प्रेरित नहीं करता। फिर भी वह प्रभु को समर्पित नहीं है, हमें यह रहस्य समझाया ही नहीं गया कि आध्यात्मिक मार्ग में आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति में अगर कोई बाधक वस्तु होती है तो वह हमारा अहंकार है। अहंकार के कारण ही हम पृथकत्व की चेतना में निवास करते हैं। अहंकार के कारण ही हम विश्वात्मा के साथ एक नहीं हो पाते। अहंकार में कामनाएँ होती हैं,

सूक्ष्म वासनाओं के बीज होते हैं, इनकी पूर्ति में ही हम बहिर्मुखी हो जाते हैं और बहिर्मुखता हमें आत्मा से, आंतरिक चेतना से दूर रखती है। अहंकार बुद्धि को यंत्र बनाकर, अपने ढंग से स्वतंत्रतापूर्वक जीवन-मार्गों पर चलना चाहता है, अपनी इच्छा के अनुसार हर वस्तु को व्यवस्थित करना चाहता है। इस प्रकार अहंकार के द्वारा प्रेरित-चालित जीवन यापन करने से हो सकता है हम एक अति सुन्दर सब प्रकार व्यवस्थित जीवन बिताने में सफल हों। किन्तु, हमें समझना है कि यह ठीक वही वस्तु नहीं होती जो हमारे हृदयेश्वर चाहते हैं। जिसकी मांग वे हमसे करते हैं। जो आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में प्रथम अनिवार्य शर्त है। जीवन के इस स्तर पर हम पूर्ण समर्पण के लिए, जो कि परमात्मा को पाने की प्रथम शर्त है, तत्पर नहीं हैं। यही वह आधार बिंदु है, जिस पर आध्यात्मिक मार्ग में हमारी अंतिम उपलब्धि निर्भर करती है।

यह तो तभी संभव है जब हम जीवन-पुष्प प्रभु-चरणों में भेंट कर देते हैं। दीपक की लौ की भांति हमारा एक-एक विचार ऊपर की ओर गति करता है। तभी अपनी सत्ता के सत्य में निवास करना हमारे लिए संभव होता है। हमारी सत्ता का सत्य चैत्य-पुरुष है। वही मानव-हृदय में विकासोन्मुखी आत्मा है। यह स्वभावतः सचेतन है। अगर हम सब कुछ चैत्य-पुरुष के निर्णय पर छोड़ना सीख लें, यह जीवन को सही दिशा

प्रदान करने में हमारी सहायता करता है। इसकी विशेषता यह है कि यह सत्य की ओर अभिमुख है। इसकी प्रार्थना प्रभु सदैव सुनते हैं।

---

*हे मानव ! तू जिसकी रचना है उसके विषय में कुछ भी कहने से पूर्व भली प्रकार विचार कर। रचना, रचित वस्तु अपनी रचना करनेवाले को कभी उसकी समग्रता में नहीं जान सकती। हमें परमात्मा को जानने के लिए दिव्य चेतना में उठना होता है जो असीम है। तभी हम उसके विषय में कुछ कहने के अधिकारी होते हैं। मन अपनी सीमा का, अपने स्वभाव का अतिक्रमण करने के पश्चात् ही आत्मा तथा परमात्मा के साथ तादात्म्य लाभ कर सकता है। तादात्म्य सदैव संभव है। तादात्म्य के द्वारा ही हम किसी वस्तु का सही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान-प्राप्ति का शास्त्रोक्त साधन तादात्म्य ही है। जब तक हम वस्तु को अपने से बाहर देख रहे हैं हमें उसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता।*

*दिव्य चक्षु प्राप्त होने पर भी अर्जुन ने विराट पुरुष को अपने से बाहर, पृथक् देखा। अतः कुछ न समझ सका, विश्व पुरुष के साथ तादात्म्य लाभ कर हम सृष्टि के सब रहस्य, उसके भेद-प्रभेद समझ सकते हैं।*

## जीवन का सही स्वरूप

अज्ञान से बाहर आ। स्मरण रख ! तू अपने सच्चे स्वरूप में, सत्ता की गह्नतम गहराई में सनातन पुरुष है। सृष्टि-विकास में तू जीव है, उसी पुरुष का अंश है। तेरे भीतर सृष्टिकर्त्ता परमात्मा का निवास है। अपनी सत्ता के सत्य के विषय में सचेतन बन। उसकी प्राप्ति के हित सब प्रकार का बलिदान करने को उद्यत हो। जीवन में अंतस्थ आत्मा को चरितार्थ कर। मानव-जीवन में अप्राप्य की प्राप्ति संभव है। परम सत्य की प्राप्ति, उसकी अभिव्यक्ति ही मानव-जीवन है, अन्यथा यह एक सारहीन सिलसिला है। जिसका कोई सारगर्भित अर्थ नहीं। उम्र भर अहंकार, मन, इंद्रियों की इच्छाओं को ही पूरी करते रहना, सुख प्रदान करनेवाली वस्तुओं के पीछे दौड़ते रहना भटकन है, जीवन का सही स्वरूप नहीं। जरा सोच, विचारपूर्वक देख, कब तक इस प्रकार इच्छाओं तथा आवेगों से भरी जीवन-नौका को खींचता रहेगा। बुद्धि का उपयोग कर। निरर्थक वस्तुओं में समय नष्ट न कर। प्राप्त समय का सदुपयोग करना मानव की उच्च बुद्धिमत्ता है। विवेक-दीप के प्रकाश में जीवन-मार्गों पर अग्रसर होने से हम अविद्या रूपी सागर को लांघ जाते हैं।

---

## योगारूढ़ता – तीन चरण

### कर्म

धरती के जीवन में हर नई उषा एक नयी आशा का रूप, एक नई चेतना का संचार होती है। हर सूर्योदय के साथ ज्ञान की एक नई किरण, विकास की एक नई संभावना पृथ्वी पर अवतरित होती है। सृष्टि में प्रति क्षण कुछ नवीन सृष्ट होता रहता है। हर प्राणी के अंदर आत्मा नये प्रभात का मूल ज्योति के प्रकटन के रूप में, नये संकल्प के साथ, मौन भाव से स्वागत करती है। मानव आत्मा के इस संकल्प को यदि हम शब्दों में व्यक्त करें तो वह इस प्रकार होगा – "आज से मेरा जीवन और अधिक पूर्णता के साथ प्रभु को निवेदित होगा। मैं प्रतिक्षण प्रभु को स्मरण रखने का प्रयत्न करूँगा। एक क्षण के लिए भी उन्हें नहीं भूलूँगा। दिन के समस्त कार्य, संकल्प-विकल्प, सारे भाव उस परम पिता को अर्पित करता जाऊँगा। रात्रि उनके चिंतन के लिए, उनकी गोद में विश्राम के लिए होगी। उनकी गोद – जो कि हम व्यक्ति सत्ता की गहराई में प्रवेश कर, वहाँ डूबकर प्राप्त करते हैं। मेरा हर विचार उसी की ओर जायेगा। हर चेष्टा उसे ही अभिव्यक्त करेगी। हर कर्म उसी की प्राप्ति का, उसी के साक्षात्कार का एक साधन-रूप होगा। जीवन आत्मा की अभिव्यक्ति का रूप धारण करेगा। हृदय-स्थित प्रभु-संकल्प की चरितार्थता ही

मेरा जीवन होगा। प्रभु आदेश का पालन मेरा लक्ष्य। आत्मिक चेतना में, आत्मिक समता में निवास मेरा धर्म। सुख-दुख में मैं अविचल बना रहूँगा। हानि-लाभ, हर्ष-शोक में तटस्थ। मान-अपमान में उदासीन, प्राप्ति-अप्राप्ति में सम। मेरी सत्ता में काम-क्रोध के लिए स्थान नहीं रहेगा। राग-द्वेष को मन से तिलांजलि दूँगा। हृदय प्रभु-प्रेम रूपी अग्नि का यज्ञ कुंड होगा, जिसमें सभी विषयों की, कामना, वासना और अहंकार की आहुति एक-एक कर प्रदान की जायेगी। समर्पण को अधिकाधिक पूर्ण बनाना, पवित्रता, स्थिरता, विनम्रता की नींव और अधिक गहरी डालना, अपने अंदर तथा चहुँ ओर प्रभु उपस्थिति के विषय में अधिकाधिक सजग होना आज से मेरा प्रथम कर्म होगा। मैं अपने व्यक्तिगत संकल्प को सदा के लिए प्रभु चरणों में समर्पित कर रहा हूँ। प्रभु इच्छा ही मेरी इच्छा, प्रभु-प्रसन्नता ही मेरे जीवन की सार्थकता होगी। मनुष्य स्वभाव की दुर्बलताओं को जीतने के लिए जहाँ एक ओर मुझे भागवत कृपा पर निर्भर रहना है वहीं दूसरी ओर, आत्म-ज्ञान एवं अनासक्ति की वृद्धि करना, सत्ता की हर क्रिया-प्रतिक्रिया के प्रति पूर्ण सचेतन रहना, उन्हें जीवन-स्वामी के चरण कमलों में समर्पित करते जाना मेरा व्यक्तिगत पुरुषार्थ होगा। अहंकार की वृत्तियों को पहचानना, उनका अत्यधिक सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करना मेरी चेतना का विशिष्ट कर्म रहेगा। कारण, अहंकार को शास्त्रों में साधक की अंतिम तथा

सबसे भयंकर कठिनाई कहा है; जब तक अहंकार है, पतन की संभावना बनी रहती है।

## तादात्म्य

एक ज्योति पुंज हम सब के हृदय में विद्यमान है। यही सर्व ज्ञान रूपी सूर्य है। यह मनसातीत है। अर्थात् हमारे मन-बुद्धि की पहुँच से परे स्थित है। फिर भी हमारा मन, मनोमय पुरुष, आध्यात्मिक ज्योति-चेतना की ओर खुलने से, अपने स्वभाव और सीमाओं को अतिक्रम करने से, इस ज्योति का दर्शन लाभ कर सकता है। यह ज्योति-पुंज चौंधिया देनेवाले श्वेत कमल के रूप में भी भासित होता है। यही वेद है। यही अमृत-कुंभ है, यही अविनाशी आत्मा और अंतस्थ सत्ता है। जो मानव मन इससे तादात्म्य लाभ करता है उसमें इसकी ज्योति प्रवेश करने लगती है। इसके प्रकाश में किसी जन्म का कोई अज्ञान-अंधकार शेष नहीं रहता। इसका तादात्म्य जीव का मुक्तिदाता एवं परम कल्याण करनेवाला है। हृदय की इस गभीर गुहा का मार्ग, जहाँ यह ज्योति पुञ्ज विराजमान है, अति संकीर्ण कहा गया है। जो मनश्चेतना तपःपूत होकर, अति तीक्ष्ण, एकाग्र, सूक्ष्म हो गयी है वही इसमें प्रवेश पा सकती है। अपरिष्कृत बुद्धि, जो सांसारिक इच्छाओं तथा आवेगों में डूबती-उतराती रहती है, इसकी झांकी भी प्राप्त नहीं कर सकती, इसमें प्रवेश की बात तो दूर रही।

कोई व्यक्ति बौद्धिक स्तर पर कितना भी विकसित क्यों न हो, जब तक वह अपनी बाह्य चेतना को इतना तैयार नहीं कर लेता कि स्थिर भाव से अंतर में पैठ सके, उसे आत्मिक दर्शन की कुंजी अप्राप्त ही रहती है। इस एकमेव आत्मा का साक्षात्कार, इस अद्वितीय सत्ता के साथ तादात्म्य – जहाँ सभी ज्ञान-विज्ञान की परिसमाप्ति है और जिसे प्राप्त कर परम प्राप्तव्य की प्राप्ति होती है – तभी संभव है जब व्यक्ति की संपूर्ण सत्ता पूर्ण रूपेण शुद्ध हो। अशुद्धि ही पर्दा है। आंतरिक तथा बाह्य शुद्धि, संयम, एकाग्रता तथा ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव आत्म-उपलब्धि की शास्त्रोक्त शर्तें हैं। जिन्हें पूर्ण करना हमारे लिए अनिवार्य है। दूसरी ओर एक ऐसी समर्पित स्थिति में निवास करना जहाँ व्यक्तिगत इच्छा तथा संकल्प के लिए कोई संभावना न रहे। पुष्प की भांति सब प्रभु की ओर उद्घाटित, उनके प्रति समर्पित हो।

## दिव्यीकरण

असीमता मुक्ति है। सीमितता बंधन है। विश्व पुरुष की चेतना के साथ एकता लाभ करने से हम व्यक्ति-भावापन्न चेतना से ऊपर उठ जाते हैं। जगत को अपने में और अपने आपको जगत में व्याप्त देखते हैं। हमारी आत्मा आध्यात्मिक विकास के चरम उत्कर्ष पर स्थित हो जाती है। ब्रह्म की सगुण एवं निर्गुण दोनों अवस्थाओं के परे परम

ब्रह्म की अथाह शांति तथा अखंड आनंद में हम स्थायी रूप से निवास करते हैं। सामान्य रूप से सभी अभीप्सु चाहे वे जिस योग मार्ग का अनुसरण कर रहे हों, सीमित अहंभाव की मुक्तावस्था को, परम शांति में निवास को योग का अंतिम लक्ष्य मानते हैं। किन्तु किसी भी उच्चातिउच्च उपलब्धि को, क्या हम अनंत सत्ता की अनंतता में, अंतिम शिखर कह सकते हैं!

विकासोन्मुखी मानव आत्मा के हृदय में विकास के अंतर्वेग के रूप में भागवत संकल्प विद्यमान है और उसे सर्वदा अग्रिम विकास के लिए, विकास के अगले अप्राप्त शिखरों पर आरोहण के लिए प्रेरित करता रहता है। शाश्वत पुरुष की परम शांति का अनंत सिंधु, परम पिता की आनंदमयी अनंत गोद प्राप्त करने पर भी मानव आत्मा के हृदय में कुछ ज्योतिर्मय स्पंदन गतिशील हो उठते हैं। भगवद् प्रचोदित स्पंदनों को हम इन शब्दों में मूर्त रूप प्रदान कर सकते हैं – "एक अद्वितीय निरपेक्ष सत्ता का, तादात्म्य के द्वारा मुझे ज्ञान है। लेकिन वह चेतन सत्ता किस प्रकार जड़ जगत के रूप में अपने आपको अभिव्यक्त करती है, कैसे वह दिव्य सत्ता इस अदिव्य जगत को अपने अंदर रखते हुए इसके अंदर स्थित है और दूसरी ओर, कैसे यह अदिव्य सृष्टि उस दिव्य सत्ता के अंदर रहते हुए, उसे अपने अंदर धारण रखती है। कैसे ये दोनों, जड़ तथा चेतन तत्व, विपरीत गुण-स्वभाव वाले होते हुए भी परस्पर संबंधित हैं,

इसका ज्ञान अभी भी मुझसे छिपा है। आत्मा मिट्टी का रूप लेता है, 'अन्नं ब्रह्म', पार्थिव तत्व ब्रह्म है, और पुनः उसी में निवास करता है। किन्तु प्रश्न है कैसे वह चेतन पुरुष जड़ का रूप लेता है और पुनः मानव देह के दिव्यीकरण अथवा रूपांतरण के द्वारा दिव्यता प्राप्त करता है। जो चेतना शक्ति जड़ तत्व के इस रूपांतर को साधित करती है, जिसमें यह क्षमता है, जिसे वेदों में महः तथा उपनिषदों में विज्ञान कहा है, उस सर्व ज्ञान तथा शक्ति संपन्न चेतना की अनुभूति, उसकी उपलब्धि अभी भी मेरी पहुँच के परे की वस्तु है। इसके लिए मुझे प्रयास करना है। यह एक अत्यंत कठिन भागीरथ कार्य हो सकता है, किंतु असंभव नहीं। प्रभु मेरे साथ हैं। मैं अपना संकल्प और पुरुषार्थ उनके दिव्य चरणों में अर्पित कर इस नव अभियान को अपना जीवन लक्ष्य निश्चित करता हूँ।"

इन प्रश्नों के उ त्तर और संदर्भ में जो शंकाएँ उठ सकती हैं, उनके समाधान के लिए श्रीअरविन्द ने अपने महान ग्रंथ "दिव्य जीवन" की रचना की है। उसमें उन्होंने बताया है कि किस प्रकार चैत्य, आध्यात्मिक तथा अतिमानसिक रूपांतर के द्वारा हम अपनी सारी सत्ता का, स्थूल शरीर तक का भी, आत्मा की दिव्य ज्योति में रूपांतर कर सकते हैं। पार्थिव या अदिव्य तत्व का दिव्यीकरण श्रीअरविन्द के पूर्ण योग की नवीनता है। इसे उन्होंने भौतिक सत्ता की अमरता कहा है, जो अब आगे अतिमानसिक सिद्धि लाभ करने पर,

उसके अवश्यंभावी परिणाम के रूप में मानव को प्राप्त होगी। रूपांतरित व्यक्ति अतिमानव कहलायेगा। जो मानव से अतिमानसिक साधना के द्वारा विकसित होगा। यह सृष्टि, विकास-क्रम की एक सतत प्रक्रिया है, जो सदा आगे बढ़ती है। अंतर्गर्भित दिव्यता को अधिकाधिक प्रकट करती है। विकास-क्रम की इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप, एक दिन पशु जाति में से किसी एक वर्ग-विशेष ने, जिस वर्ग के अंदर विकासोन्मुखी विश्व सत्ता का यह अंतर्वेग, उस संभावना को लेकर पहले से ही विद्यमान था, मनुष्य को जन्म दिया था। उस समय पशु सदृश उस मनुष्य में, मनुष्य स्वभाव का, उसकी अंतर्निहित क्षमता का कोई चिह्न नहीं था। सब भीतर था और समय की गति के साथ-साथ ऊपरी सतह पर आता गया। पशु को मनुष्य के रूप में विकसित देखकर, विकासोन्मुखी सत्ता की गति पर विश्वास करते हुए हम घोषणा कर सकते हैं कि एक दिन मनुष्य जाति अतिमानव जाति में अवश्य विकसित होगी।

नव वर्ष के इस नव प्रभात में हमारा मिलन इसी अतिमानसिक अनंत विकासोन्मुखी प्रेरणा का ग्रहण कर्ता हो। "विकास, सदैव अनंत विकास।"

---

## आत्म-साक्षात्कार

आत्म-साक्षात्कार को प्रायः ही शास्त्र एक कठिन कार्य बताते हैं। कारण, मनुष्य स्वभाव से अहमात्मक चेतना में निवास करते हैं और आत्म-साक्षात्कार के लिए अहं का त्याग, क्षुद्र अहमात्मक व्यक्ति-चेतना से ऊपर उठना प्रथम शर्त है। आत्म-साक्षात्कार को सरल भी बनाया जा सकता है। अगर हम भगवान की शरण ग्रहण करें, उन्हें सहायता के लिए पुकारें, उन्हें समर्पित होकर जीवन जीयें। अगर हमारी जीवन-धारा सीधी उनकी ओर बहे। हर विचार, भाव तथा कर्म उन्हीं के संकल्प की अभिव्यक्ति हो। ईश्वर प्राप्ति का विचार ही हमारे जीवन में सर्वोपरि हो। समर्पित व्यक्ति की अपनी इच्छा नहीं रहती। जीवन के हर व्यापार में निर्णय लेना, चुनाव करना वह भगवान पर छोड़ता है। उसकी चेतना पूर्ण शुद्ध हो जाती है। भागवत संकल्प को जानना, उसी की प्रेरणा के अनुसार कर्म करना, उसके लिए स्वाभाविक हो जाता है। वह सब स्थितियों में संयमित एवं एकाग्र रहता है। किसी भी शक्ति के प्रभाव से प्रभावित नहीं होता। आत्म-चिंतन ही उसके चित्त की स्थिति होती है। वृत्तियाँ अंतर्मुखी। अपने बाह्य व्यवहार में भी, वह अपने अंदर स्थित रहता हुआ पदार्थों तथा प्राणियों में उनके आंतरिक सत्य के साथ व्यवहार करता है। यह संसार उसकी दृष्टि में एक सतत स्थायी प्रवाह है जिसका आधार

परमात्मा हैं, जिसमें क्षणभंगुर वस्तुएँ अपने-अपने निर्दिष्ट गन्तव्य की ओर गति कर रही हैं। एक भागवत चेतना इसे धारण कर रही है, उसके द्वारा यह धारित है, एक भागवत उपस्थिति इसके कण-कण में विद्यमान है। इस भागवत उपस्थिति के साथ तादात्म्य लाभ करना सृष्टि में मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। तभी उसे संसार में अपने आगमन का सही प्रयोजन ज्ञात होता है। वह आत्मा है अर्थात् उसका सच्चा, मौलिक स्वरूप आत्मा है और उसकी अभिव्यक्ति ही उसके जीवन का स्वरूप होना चाहिये। आत्म-ज्ञान तथा आत्मा की मुक्तावस्था में निवास करना और दूसरों को उसी चेतना-स्तर पर उठने के लिए प्रेरित करना, संभव हो तो सहायता करना संसार में उसका कर्तव्य है।

---

*हे प्रभो ! इतनी कृपा अवश्य करना। मुझे समय रहते वह क्षमता प्रदान करना जिसके द्वारा मैं संसार को समझा सकूँ कि श्रीअरविन्द का संदेश मानव-जाति के लिए क्या है। श्रीमाताजी, जो कि जीवन भर श्रीअरविन्द की सहयोगिनी रहीं, अपने जीवंत उदाहरण से हमें क्या सिखाना चाहती हैं। किस प्रकार का जीवन वे पृथ्वी पर लाना चाहती हैं। जिसमें मानव जाति की सभी समस्याओं का समाधान निहित है। मेरी उदासी देखकर मेरी आत्मा ने कहा– मेरे समीप बैठो !*

## तादात्म्य

हम विचार के द्वारा वस्तुओं के सत्य पर नहीं पहुँच सकते, वस्तु-स्थिति का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते, किसी मनुष्य की चेतना के, उसके विकास के स्तर को, उसकी स्थिति को ठीक-ठीक समग्र रूप में नहीं समझ सकते। वस्तु सत्य को जानने के लिए, उसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें वस्तु के साथ तादात्म्य लाभ करना होता है। समग्र ज्ञान प्राप्ति का शास्त्रोक्त साधन तादात्म्य ही है। अपनी चैत्य सत्ता के साथ तादात्म्य लाभ करके ही हम अपनी सत्ता को पूर्ण रूप से समझ सकते हैं। विश्वात्मा के साथ तादात्म्य लाभ करने के पश्चात् ही विश्व को, उसमें कार्य करने वाली शक्तियों को, उनके भेद-प्रभेद के साथ जान सकते हैं। व्यक्ति-सत्ता और विश्व-सत्ता दोनों का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें परात्पर के साथ तादात्म्य लाभ करना होता है। परात्पर के साथ एकत्व लाभ होने के पश्चात् हमारे लिए सृष्टि में या इससे परे कुछ भी ऐसा नहीं रहता जिसे हम नहीं जानते, जिसका ज्ञान हमें न हो, जो हमारी चेतना के बाहर हो। उस दृष्टि से देखने से संसार में कोई भी वस्तु पूर्णतः मिथ्या, तुच्छ, अशुभ नहीं दिखायी देती। जिन्होंने इस जगत को माया, मिथ्या अशुभ देखा उन्होंने केवल जगत सत्ता के बाह्य रूप को, उसके आंशिक सत्य को, उत्तल पर भासित होने वाली अभिव्यक्ति

को ही देखा और उसे ही जगत का, उसकी सत्ता का पूर्ण स्वरूप समझा। हम कह सकते.हैं कि अगर वे परम चैतन्य के और अधिक ऊँचे स्तरों पर आरोहण करते, अपनी और जगत सत्ता की गहराई में और अधिक गहरे पैठते तो उनका दृष्टिकोण पूर्णतः परिवर्तित होता। उसका रूप भिन्न होता। उनकी घोषणा श्रुतियों में वर्णित सत्य की सर्वोच्च अभिव्यक्ति के अनुरूप होती। उसकी सीधी अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण करती। वे ब्रह्म तथा जगत दोनों को उनकी मूलभूत सत्ता में – जो कि एक अखंड परमार्थ तत्व है – एक साथ देख पाते।

---

*धरती पर आगमन के कारण को जानने का प्रयास कर ! सब अवस्थाओं में परमात्मा की शरण ग्रहण कर। उन्हें सब कुछ सौंप दे। तेरी सहायता अवश्य होगी। वह तेरा पथ-प्रदर्शन करेंगे। आवश्यक शक्ति और चेतना प्रदान करेंगे। श्रद्धा रख ! विश्वास मत खो ! अवश्य मंगल घटित होगा। धरती के दिवस परिवर्तित होंगे। वे स्वर्णिम रूप धारण करेंगे। अंतर आवरण हीन होगा। आंतरिक सत्ता के प्रकाश में खड़ा होते ही मानव का भाग्योदय होना अवश्यंभावी प्रकरण है।*

## अनुभूति

हे प्रभो ! आज स्थिति विचित्र है। मैं मन पर कुछ निराशा की झलक देख रहा हूँ। हतोत्साहित-सा हृदय लेकर तेरी ओर मुड़ा हूँ। तू सब जानता है, कैसे यह संभव हुआ। तू मेरे हृदय की वेदना-भरी आह को समझ रहा है। कैसे मैं एक अंधकार के सिंधु को पार कर आज प्रकाश में खड़ा हूँ। हृदय पर चाकू चलाये। तब अहंकार को एक विजातीय तत्व देखने में समर्थ हुआ। अन्यथा मैं इसे अपना आप ही समझता था। इसकी हर इच्छा को अपनी ही मानता था। यह तो वर्षों चिंतन-मनन के पश्चात् ही संभव हुआ है कि मैं जीवन के सही स्वरूप को देखने-समझने में समर्थ हूँ और तेरे सम्मुख सब कुछ खोल देने में ही आत्म-मंगल देख रहा हूँ। मैं मनुष्यों को किस प्रकार समझाऊँ, कैसे विश्वास दिलाऊँ कि जिस चेतना में उनका निवास है वह उनकी सत्ता का सही, सच्चा स्तर नहीं है। उन्हें इस वर्तमान पृथकत्व की चेतना से जितना शीघ्र संभव हो बाहर आना चाहिये। इस स्तर से ऊपर एक विश्वमयी चेतना है जो सर्वमंगलमयी है, जहाँ हम सब एक हैं, जिसमें उठना हम सब के लिए संभव है। व्यक्ति-चेतना की परिधि के परे जाते ही हम यह समझने में समर्थ होते हैं कि एक जगत-जननी की गोद में हम सब पल रहे हैं। हम सब की सत्ता का सत्य एक है, अस्तित्व एक है, जीवन तत्व जिसके द्वारा हम सब

जीवित हैं, एक है। मूल चेतना एक है। उसी से हर प्राणी चेतना प्राप्त करता है। सारा विश्व मकड़ी के जाले के समान है। जाले में बहुत-सी इकाइयाँ होते हुए भी वह मूल स्वरूप में एक है। हर इकाई मूल एकत्व से बंधी है। ईश्वर, जीव तथा जगत तीनों परम एकत्व की अवस्थाएँ हैं। एकत्व चरम सत्य है, सार है।

---

*जब हम भागवत कृपा में विश्वास नहीं करते, यहाँ तक कि जब भगवान के अस्तित्व को भी नहीं मानते, तब भी वे दीनबंधु हमारे ऊपर कृपा बरसाते रहते हैं। जो उनके पक्ष को ग्रहण करता है और जो विपक्ष में खड़ा होता है वे दोनों को ही सामर्थ्य प्रदान करते हैं। कारण, दोनों ही उनके रूप हैं। समर्थक हो या प्रतिस्पर्धी दोनों में वे ही हैं। देव और दानव दोनों उसी विश्व-पुरुष की असंख्य भुजाओं में से है। ज्ञान ही नहीं अज्ञान भी उन्हीं से जन्म पाता है। किन्तु उसका यह जन्म सीधा नहीं होता। भागवत संकल्प की सीधी चरितार्थता नहीं होती। इसके पीछे एक घुमाव होता है, एक लंबी प्रक्रिया रहती है। जिसके द्वारा दिव्य ज्ञान अपने आपको अज्ञान में परिवर्तित करता है। भगवान के दिव्य स्वरूप में अज्ञान-अंधकार जैसी कोई वस्तु नहीं होती, यह असंभव है।*

## भीतर झाँकें

हे आत्म-दर्शन के अभिलाषी ! हे सत्य के अन्वेषक ! अपने हृदय को टटोल ! भीतर झाँक ! देख कहीं तेरे अंदर, तेरे हृदय के किसी कोने में, किसी के प्रति घृणा तो नहीं है। ऐसा तो नहीं कि मनुष्य जिसे पापी अथवा दुष्ट व्यक्ति कहते हैं और उससे घृणा करते हैं, तेरी दृष्टि में भी वह, घृणा का पात्र हो। यदि ऐसा है तो सावधान ! यह भली प्रकार समझ ले कि तू दो नौकाओं में एक साथ यात्रा नहीं कर सकता। यह असंभव है। मानव-हृदय जब घृणा को त्याग कर, भागवत प्रेम से भर जाता है– जब प्राणी मात्र को प्रेम की दृष्टि से देखना तथा उसे प्रेम करना, उसका स्वभाव बन जाता है– तब प्रभु हम पर प्रसन्न होते हैं। आत्मा के ऊपर से पर्दा हटता है। हम अपने आपको उस गहराई में स्थित पाते हैं जहाँ आत्म-साक्षात्कार सिद्ध होता है। उस उच्चता में अपना आसन स्थापित करने में सफल होते हैं जहाँ समत्व लाभ होता है। समत्व – जिसे शास्त्रों में योग कहा गया है। "समत्वं योगं उच्चते।" चेतना का वह स्तर हमें प्राप्त होता है जहाँ मानव आत्मा विशाल से विशालतर क्षितिजों को अपने अंदर समेटती आगे बढ़ती है।

प्राचीनतम शास्त्रों के प्रकाश में जब हम विनीत भाव से खड़े होते हैं, हम दुष्ट तो क्या अपने शत्रु से भी घृणा नहीं

करते। हमारा हृदय उनके लिए उस समय भी आत्म-प्रेम से भरा होता है, जब हम कर्तव्य-पालन के रूप में भागवत आदेश के अनुसार, उसका शिरोच्छेद करते हैं।

---

*जिसने सब प्रभु को समर्पित कर दिया है, अंतर्वेदी पर निवेदित किया है, वही, केवल वही इस संसार में सबसे सुखी और सबसे धनी है। उसीके पास सब कुछ है।*

*जब हम परम अस्तित्व का एक अंग, उसकी एक तरंग हो जाते हैं, हमारा व्यक्तित्व और परम पुरुष का व्यक्तित्व – जो कि निर्वैयक्तिक होता है तथा दोनों से परे भी – एक होता है। हमारा संकल्प और प्रभु का संकल्प एक और अभिन्न हो जाता है। अतः प्रभु की शक्ति हमारी अपनी शक्ति, प्रभु की चेतना हमारी अपनी चेतना होती है। हमारे अंदर, हमारे द्वारा प्रभु ही प्रार्थना करते, प्रभु ही कर्म करते हैं, वे ही निर्णय लेते, चुनाव करते हैं। असीम के साथ युक्त होकर हमारी क्षमताएं -- अगर उन्हें हमारी कहें-- असीम हो जाती हैं। प्रभु कें साथ युक्त होकर हम सर्वसमर्थ हैं, सब कुछ हैं। उससे पृथक् होकर अर्थात् पृथकत्व की चेतना में कुछ नहीं हैं।*

## अहंशून्यता

संसार में सबसे निम्न स्तर उन मनुष्यों का है जो पूर्ण रूप से शारीरिक चेतना में निवास करते हैं। जब हम आत्मा में सचेतन नहीं होते, केवल शरीर, मन तथा अहंकार – इनकी इच्छाओं का एक जीवन्त भवन मात्र होते हैं। आहार, निद्रा, सुख-भोग हमारे जीवन का स्वरूप होता है।

जैसे ही हम साधन-मार्ग पर पहला पग रखते हैं हमसे पूर्ण सत्यता तथा समर्पण की मांग की जाती है। कारण, इसी स्थिति में प्रभु-इच्छा को जानना हमारे लिए सहज, स्वाभाविक होता है। आत्मा के प्रभाव में रहना, सत्ता के हर भाग में उसकी ओर उद्घाटित रहना, पूर्ण अहंशून्यता में निवास करते हुए केवल आत्म-प्रेरित कर्म करना, आंतरिक तथा बाह्य व्यक्तित्व में पूर्ण समस्वरता का प्रतिष्ठापन, इस स्थिति की अनिवार्य शर्तें हैं।

अगर हम पर्दा हटाना चाहते हैं – हम चाहते हैं कि प्रभु हमारे जीवन को अपने ढंग से संयोजित, व्यवस्थित करें – तो हमें आत्म-चेतना में उठना होगा, अर्थात् चैत्य-भाव में निवास करना होगा। आत्मा के सभी गुण अपने स्वभाव में धारण करने होंगे। चैत्य भाव में उठते ही, आत्मा के स्वभाव को अपनाते ही प्रभु हमें स्वीकार कर लेते हैं। उनके द्वारा स्वीकार किये जाने पर हम कह सकते हैं कि हम

समर्पित हैं। समर्पण सत्यता है, शुद्धि है, आत्म-उपलब्धि के मार्ग में अपेक्षित स्थिति है।

विश्व-पुरुष के साथ तादात्म्य लाभ होने से अहंशून्यता आती है। आत्मा की अनंतता में अहं के लिए स्थान नहीं।

शाश्वतता का प्रथम स्पर्श प्राप्त करते ही हमारे स्वभाव से शीघ्रता करने का भाव झड़ जाता है।

आत्म-स्थित व्यक्ति कभी विचलित नहीं होता। धैर्य का सिंधु उसकी चेतना में लहराता है।

---

*मनुष्य को जागना होगा। जहाँ भी वह है, जिस देश में है, जिस जाति में है, जिस किसी भी धर्म का वह अनुसरण कर रहा है उसे अपनी चेतना में, देश, जाति तथा अपने धार्मिक स्तर की चेतना से ऊपर उठना होगा। यहाँ तक कि उसे मानव-चेतना के उच्चतम स्तर का भी अतिक्रमण कर एक अतिमानसिक चेतना में अपना निवास संभव बनाना होगा। तभी वह अपनी व्यक्तिगत तथा समाजगत समस्या का समाधान प्राप्त करने में समर्थ होगा। तभी वह अपनी वर्तमान राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा आचार-सम्बन्धी समस्याओं से बाहर आ सकेगा।*

## परिवर्तन संभव

[ हम यह अनुभव इसलिए लिख रहे हैं कि जिनका यह अनुभव है, उनका स्पष्टीकरण हो। जिनको नहीं हुआ, वे प्रेरणा प्राप्त करें। ]

जब मेरा तादात्म्य मेरी आन्तरिक चेतना से होता है – जो कि मेरा सच्चा स्वरूप है – वहाँ बैठकर जब बाहर दृष्टिपात करता हूँ तो देखता हूँ कि इन्द्रियों के व्यापार चल रहे हैं, किन्तु उनसे मेरा कोई संबंध नहीं। शरीर के सुख-दुख मेरे से बाहर हैं। उसके जन्म-मरण के साथ मेरा कोई संबंध नहीं, यह ज्ञान मुझे रहता है। मनोमय पुरुष को क्रिया करते, चिन्तनशील रहते, विचारों में व्यस्त रहते मैं देखता हूँ। प्राणमय पुरुष को पृथक् देखता हूँ। संसार के प्रति, विषयों के प्रति उसका आकर्षण, उसका मोह तटस्थ भाव से देखता रहता हूँ। मुझे स्मृति है कि मेरे बहुत से जन्म हो चुके और इसी प्रकार मैंने कितने ही शरीर भिन्न आकारों तथा क्षमताओं से युक्त, उपयोग किये हैं। श्रीअरविन्द के अनुसार हर जन्म में हमें नये मनोमय, प्राणमय तथा अन्नमय पुरुष मिलते हैं और हर बार हमें उन्हें शिक्षित करना होता है। इस जन्म में भी ऐसा ही है। एक दीर्घ-काल के संघर्ष के पश्चात् मेरी आत्मा में शक्ति आयी है, उसे क्षमता प्राप्त हुई है। मैं इनमें, इनके स्वभाव में, इनकी चेतना में परिवर्तन लाने में समर्थ हुआ हूँ। अब

इनकी गति ऊर्ध्वमुखी है। ये शांति तथा उन्नति का महत्त्व समझते हैं। आत्मा की ओर सतत उद्घाटित रहने के अभिलाषी हैं। इनमें उच्च चेतनाएँ अवतरित होती हैं जिनके द्वारा इनका ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है। मानसिक चेतना की परिधि को, मानवीय स्वभाव को अतिक्रमण करने में समर्थ होता है। जीवन-स्तर दिन-दिन आध्यात्मिकता में प्रवेश पा रहा है।

विकास के प्रारंभ के जन्मों में, मनुष्य के अंदर उसकी आत्मा सुप्त रहती है, अर्थात् जीवन की घटनाओं में हस्तक्षेप नहीं करती, मानव-जीवन की बागडोर उसके यंत्रों के ही हाथों में होती है। अपनी-अपनी इच्छाओं की पूर्ति के हित ये जीवन-धारा को मोड़ते रहते हैं। इन्हें अपने नियंत्रण में करना, आत्मा की दिक् मोड़ना, इनके स्वभाव में परिवर्तन लाना तभी संभव होता है जब हमारे अनुभवों का भंडार पर्याप्त मात्रा में भर जाता है, भव-उपवन के मीठे-कड़वे फल खाकर हमारे अंदर विवेक जागता है और भीतर आत्मा के ऊपर पड़े हुए पर्दे को हम कैसे भी हटाने में समर्थ होते हैं। जब आत्मा की ज्योति हमारे जीवन को जगमगाने लगती है, जीवन-मार्ग उसकी ज्योति से ज्योतित रहते हैं। इंद्रियों सहित मन अंतर्मुखता का भाव अपना लेता है। भोग-राग में स्पृहा-रहित हो जाता है। जब आत्म-सत्य में निवास की

उत्कण्ठा प्रदीप की लौ का रूप धारण कर लेती है, सारी सत्ता की गति कमल पुष्प की भांति; संसार के ऊपर स्थित सूर्य की ओर ऊर्ध्वमुखी हो जाती है।

---

*सबका आदि मूल अस्तित्व एक परम सत् है। वही पदार्थों तथा प्राणियों में आधारभूत जीवन है। वही इनमें चेतना। वही जगत के पीछे शक्ति। वही जगत में रक्षक है, वही इसका पालक। वही इसमें चेतना है वही प्राप्तव्य। वही जगत के पीछे सहायक के रूप में, एक पथ-प्रदर्शक के रूप में सदा विद्यमान है। शास्त्र उसे परमात्मा भी कहते हैं। उससे प्रेरित मानव आत्मा निज लक्ष्य को छोड़कर — जो कि उसके प्रियतम के द्वारा ही निर्धारित किया होता है — अन्य किसी ओर नहीं देखती। वह केवल स्वकर्त्तव्य की ओर, प्रभु-आदेश-पालन की ओर ध्यान देती है। परिणाम की चिंता करना उसके लिए अस्वाभाविक है।*

---

*ईश्वर को हृदय में सिंहासनारूढ़ करना, उसी के आदेशानुसार बरतना, जीवन को उसी के संकल्प की चरितार्थता का रूप प्रदान करना, हर संसिद्धि के लिए उसी की ओर मुड़ना, मनुष्य की उच्च बुद्धिमत्ता है।*

## स्वप्न जगत

स्वप्न जगत की लीला बड़ी विचित्र है। हम बिल्कुल भूल जाते हैं कि भौतिक जगत में हमारी वास्तविकता क्या है। यहाँ का धनी अपने आपको निर्धन के रूप में पा सकता है और निर्धन, धनी के रूप में। जब स्वप्न टूट जाता है और हम अपने तथा जीवन के स्वाभाविक स्वरूप में लौट आते हैं, जिस स्वरूप में देखने का हमारा स्वभाव बना हुआ है, जिसे हम सत्य मानते हैं, ठोस अनुभव करते हैं, तो हम महा आश्चर्य में डूब जाते हैं।

लेकिन अगर हम चाहें ऐसा कह सकते हैं, कि एक दृष्टिकोण से देखने से हम सभी जाग्रत अवस्था में भी एक प्रकार के स्वप्न जगत में निवास कर रहे हैं। हम अपने सत्य स्वरूप में दिव्य पुरुष हैं और इस जगत में अपने आपको शरीर रूप में देख रहे हैं। हम स्वाभाविक रूप से मुक्त हैं, यहाँ बंधन में अनुभव कर रहे हैं। हम समर्थ हैं, यहाँ अपने आपको असहाय देख रहे हैं।

कैसे टूटे यह स्वप्न? शिशुओं में से किसी ने पूछा। "संकल्प शक्ति का प्रयोग करो, एकाग्रता का अभ्यास करो।" एक दिव्य वाणी गूंज उठी। लगता था कि धरती के हर प्राणी के लिए थी और उनकी आत्मा में झांक कर कह रही थी। "अपनी वर्तमान अज्ञानमय स्थिति से बाहर आओ, ऊपर उठो।"

## सुनहरी कुंजी

मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं। लेकिन आत्म-विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में उनका प्रेम मोह का रूप ग्रहण कर लेता है। वे मोह में फंस जाते हैं। मोह का प्रकृति जनित स्वभाव है कि वह अलगाव नहीं चाहता, बिछुड़ना उसे सहन नहीं है। वह चिपके रहना चाहता है। हमारे अंदर प्राण-प्रकृति का यही स्वरूप है। किन्तु बिछोह अनिवार्य है। यह प्रकृति का नियम है। संसार में आकार अमर नहीं है, परिस्थितियाँ स्थायी नहीं होती। सदा एक सा पवन नहीं बहता। ऋतुएं परिवर्तित होती हैं। अतः एक दिन सबको एक-दूसरे से बिछुड़ना होता है। सब कुछ जानते-समझते हुए भी हम कष्ट पाते हैं। मोह का बंधन अति कठोर, आत्मा को बांधने में सर्वाधिक बलवान होता है। चेतना की विशालता में मोह नहीं है। रूपांतर के पश्चात् बिछोह नहीं। व्यक्ति-सत्ता जब आत्मा की दिव्यता में रूपांतरित होती है, वह सब प्रकार स्वतंत्र हो जाती है। प्रकृति के नियम का अतिक्रमण करती है। वह जब तक चाहे संसार में निवास कर सकती है।

---

*स्वभाव में परिवर्तन चेतना के विकास का लक्षण है। हम स्वार्थ-भाव तज कर मानव मात्र के हित में सोचते हैं।*

## समत्व भाव

जीवन में जो भी घटित हो उसे सहज भाव में ग्रहण करें। हो सके तो सही भाव में लें और उसके पीछे छिपे भागवत प्रयोजन को समझने की कोशिश करें। कैसी भी स्थिति क्यों न हो, आत्मा से प्रेरणा लेना, उसके इंगित पर निर्भर करना, उसका आदेश पालन करना सदैव मंगलकारी सिद्ध होता है। व्यक्ति हो या जाति, घटना सामान्य हो या विनाशकारी, हम देखेंगे कि हमारे आत्म-विकास में उसका होना आवश्यक था। हमारे जीवन-लक्ष्य की पूर्ति में, व्यक्तित्व के निर्माण में, उसका हस्तक्षेप अवश्यंभावी था।

सृष्टि में कुछ भी संयोगवश घटित नहीं होता। हर घटना के पीछे भागवत्त संकल्प होता है। एक विश्वव्यापी ऊर्ध्वमुखी योजना में उसका निर्दिष्ट स्थान होता है – जो पराचेतना की सर्वज्ञ, सर्वकालद्रष्टा दृष्टि के द्वारा सृष्टि मंच पर घटित होने के बहुत पहले देखा जा चुका है।

जीवन मार्गों पर चलते समय हम उन आत्माओं का उदाहरण लेते हैं, जो हमें संयोगवश मिलती हैं, जिनसे हमारा परिचय अथवा संबंध होता है, उसके पीछे यही भागवत संकल्प होता है और जब हमारे गहरे संबंध विच्छेद में बदल जायें, शुद्ध संयोग वियोग में पलट जायें तब भी, उस स्थिति में भी, उन सबके पीछे यही भागवत संकल्प होता है। अतः अगर कोई हमारा प्रियजन हमें छोड़कर चला

जाये अथवा अन्य कुछ ऐसा घटित हो जो हमें कष्टकर प्रतीत होता है तो हमें विचलित नहीं होना चाहिये। वरन्, धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी चाहिये कि देखें, इसके पीछे क्या रहस्य है। कैसी भी स्थिति क्यों न हो, हमारा मनोभाव होना चाहिये, "भगवान भूल नहीं करते, फिर यह ऐसी परिस्थिति क्यों उत्पन्न हुई, प्रभु ने ऐसा क्यों किया? अवश्य इसमें मेरा कोई मंगल छिपा है, क्योंकि वे कृपासिंधु वैसा दूसरा कुछ करेंगे ही नहीं जिसमें मेरा मंगल न हो।"

इस भाव में हम अपनी आत्मा के समीप हैं जहाँ सदा मंगल बरसता है, उच्चतर क्षमताएं प्रदान की जाती हैं। प्रभु पर पूर्णतया निर्भर करना अपने-आपमें महान गुण है। आत्म-विकास की उच्चता का लक्षण है।

----

*सृष्टि-कर्त्ता जगदीश्वर हर मानव आत्मा से आशा करते हैं कि वह उनके सृष्टि-निर्माण-कर्म में हाथ बंटाये और इसे इसके लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता प्रदान करे। वह लक्ष्य है– सृष्टि का हर प्राणी अपने दिव्य मूल स्वरूप के प्रति सचेतन हो, उसकी दिव्यता में रूपांतरित हो। यह कहा जा सकता है कि अगर मनुष्य सहयोग प्रदान करें तो संसार के जीवन का स्तर शीघ्र ऊँचा उठ सकता है।*

## शरीरं धर्म साधनम्

जिस दिन मैंने यह निश्चय किया कि मैं संसार में भगवान का कार्य करूंगा। मेरा जीवन अपने लिए नहीं, मानव जाति के लिए होगा। उसी दिन से आयु को बढ़ाने की अभीप्सा मेरे हृदय में जागी। मैंने अपने आवेगों को नियंत्रित किया। कारण, हर आवेग शरीर में प्रवाहित जीवन तत्व पर एक आघात होता है जो उसे एक कदम निर्जीवता की ओर ठेलता है। मैंने क्रोध को जीता। कारण, क्रोध जीवन तत्व को जलाता है। मैंने अपनी इंद्रियों को अंतर्मुखी किया। कारण, इसके बिना कोई व्यक्ति अमरत्व की ओर नहीं बढ़ सकता, न पूर्ण आयुष्य प्राप्त कर सकता है। एक लंबा रास्ता तय करने के पश्चात् मैंने देखा कि इन वस्तुओं की जड़ अहंकार में है। क्षुद्र अहमात्मक व्यक्तित्व में है। एक दीर्घ एवं कष्टप्रद तपस्या के द्वारा, बहुत तरह के कड़वे घूंट भरने के पश्चात् पृथक्करण संभव हुआ। अहंभाव को अपने से पृथक् देखने में सफल हुआ। अब मैं सदैव प्रसन्न रहता हूँ। विक्षोभ उत्पन्न करने वाले सभी तत्वों का मैंने अंतर अग्नि में होम कर दिया। " प्रभु को समर्पित जीवन में ही पूर्ण स्वास्थ्य, दीर्घायु, अमरत्व संभव है।" जैसे ही हृदय स्थित देव के चरणों में बैठा, उसने मुझे भली प्रकार समझा दिया।

---

# शांति

मेरे लिए यह सोचना स्वाभाविक है कि मैं यह शरीर हूँ, जिसमें एक प्राण गतिशील है। मैं मन हूँ जो विचार करता है, जिसमें कुछ इच्छाएं-आकांक्षाएं इत्यादि हैं। यह सब सत्य है और इस सत्य में हम सब निवास करते हैं। लेकिन यह सोचना भी उतना ही सत्य प्रतीत होता है और स्वाभाविक भी है कि यह शरीर, यह मन और अहंकार मेरे यंत्र हैं। मैं इनका उपयोग करता हूँ। इनमें इच्छाएं उठती हैं लेकिन यह जरूरी नहीं कि वे सब मुझे पसंद हों। मैं कभी-कभी उन्हें अस्वीकार भी कर देता हूँ। और कभी-कभी दो विपरीत दिशाओं में इच्छा करता हुआ, विचार करता हुआ भी अपने आपको पाता हूँ। इच्छाओं और विचारों की यह विपरीतता, अपने में और इन यंत्रों में यह भिन्नता मुझे सोचने के लिए बाध्य करती है कि हम एक नहीं हैं। कहीं कोई रेखा है जो हम दोनों को विभाजित करती है। भिन्न-भिन्न स्तरों पर दर्शाती है। हमारा स्तर पृथक्-पृथक् है।

मैं अपनी चेतना को जब इन यंत्रों के साथ एक देखता हूँ और मन तथा शरीर को अपना आप समझता हूँ तब मुझे शास्त्र की वाणी स्मरण हो आती है जहाँ वे कहते हैं, "ये मन, प्राण, शरीर, इंद्रियाँ और यह यांत्रिक प्रकृति तुझे एक कार्य विशेष के लिए अर्थात् अपने आत्म-विकास के लिए,

अपने सत्य स्वरूप को खोजने के लिए प्रदान की गयी है। तू पुरुष रूप में इन यंत्रों से, प्रकृति से ऊपर है। इनसे परे आत्मा है। तू इस सारी सत्ता के स्वामी के रूप में अपना अस्तित्व रखता है। जो स्थायी है, शाश्वत है, सनातन है, आदि और अंत से रहित है, जन्म मरण से मुक्त है।"

इस प्रकार सोचने से शास्त्रों के इन वचनों में आस्था रखने से, मुझे एक आंतरिक शांति अनुभव होती है, एक सुख प्राप्त होता है। लगता है मैं एक सत्य से, मधुरता से और आनंद से भरे स्थल पर निवास कर रहा हूँ। मेरी सब बेचैनी दूर हो जाती है। भटकन समाप्त हुई सी प्रतीत होती है। मानो किनारा पास आ गया है। जीवन नौका हल्की और उसकी गति तीव्रतर प्रतीत होती है। पथ में कहीं विरोध नहीं। कहीं अड़चन नहीं। कोई अटकाव, अंदर-बाहर कोई द्वन्द्व दिखाई नहीं देता। सब सुख से, आनंद से, आशा और उत्साह से भर उठता है।

---

*बाह्य जीवन में सफलता और आंतरिक जीवन में सफलता दो भिन्न वस्तुएँ हैं। इनका स्तर भिन्न है। प्राप्ति के साधन भी भिन्न हैं। इनकी ओर प्रेरित हमारे भावों में भी भिन्नता होती है।*

## परिस्थिति सबकुछ नहीं

उन्नत आत्मा अपने जीवन लक्ष्य की संसिद्धि के लिए बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करती। बाहर से दिखाई देने में चाहे कितनी भी विषम परिस्थिति क्यों न हो, वह उसे कम से कम इतना अनुकूल अवश्य बना लेती है जिसमें उसका विकास, उसका लक्ष्य सिद्ध हो सके।

चैत्य-पुरुष समझता है कि अगर परिस्थिति ठीक वैसी ही न होती, जैसी कि वह इस समय है, तो उसका समर्पण सर्वांगीण न होता, उसका विकास एकपक्षीय रहता, उसका अनुभव सीमित, अपूर्ण। हम दुहराते हैं – हमारा चैत्य-पुरुष यह जानता है कि अगर वह इस परिस्थिति- विशेष में से न गुजरता तो उसे अनुभव की यह उच्चता, यह विशालता कभी उपलब्ध न होती। जो इस वर्तमान, बाहर से देखने में विषम, प्रतिकूल परिस्थिति में से गुजरने के पश्चात हुई है।

श्रद्धा, धैर्य, सहनशीलता, अंतिम विजय में विश्वास, चैत्य-पुरुष के स्वाभाविक गुण हैं।

---

*मैं हर प्राणी का दो कारणों से आदर करता हूँ। प्रथम, हर प्राणी में प्रभु का निवास है। दूसरे, हर प्राणी उसी का रूप है।*

## कामना की आहुति दें

मनुष्य के शरीर में दो ग्रंथियाँ हैं। ये दोनों ग्रंथियाँ पृथक्-पृथक् अवस्थाओं में क्रियाशील होती हैं। इनमें से एक ग्रंथि वह द्रव्य बनाती या उससे बहता है, जो जीवन प्रदान करता है। दूसरी से वह द्रव्य बहता है जो जीवन को जलाता, जीवन रस को क्षय करता, उसका अंत करता है। पहली जीवन प्रदान करनेवाली ग्रंथि तब क्रियाशील होती है जब मनुष्य शांत, प्रसन्न और आनंदित चित्त में निवास करता है। दूसरी, जीवन सरिता को सुखाने वाली तब क्रियाशील होती है जब हम क्रोध, दुश्चिंता, भय, दुर्भावना, प्रतिशोध आदि के आवेश में ग्रस्त होते हैं। पहली अवस्था बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम सत्य, धर्म, दया, न्याय, प्रेम आदि गुणों के प्रभाव में रहें। दूसरी में हम अपने आत्म-सत्य से दूर किसी वासना, कामना, अहंमय तुष्टि के पीछे, उसकी तुरत प्राप्ति के आवेश से भर उठते हैं और जब तक सचेतन नहीं होते, तृष्णा की ज्वाला में, आवेगों की अग्नि में झुलसना हमारी नियति रहती है। पहली स्थिति में हम आत्मा के समीप पहुँचते हैं, दूसरी हमें दूर ले जाती है। पहली में पर्दा हटता है, दूसरी घना करती है। उस स्थिति में हमारी विवेक-बुद्धि नष्ट हो जाती है और हम मनुष्य के स्तर से गिर जाते हैं। प्रायः वह करते हैं जो नहीं करना चाहिये। जिसमें सब अमंगल ही छाया होता है।

जब तक हमारा हृदय जग-पदार्थों में आसक्त है, उनमें खिंचाव अनुभव करता है, जब तक हमारे हृदय में कामना का काला नाग आसीन है और हम विषयों में रस लेते हैं, भोगों के प्रति आकर्षण अनुभव करते हैं, प्रलोभनों के द्वारा अशांत, विक्षुब्ध और संतप्त किये जाते हैं तब तक तृष्णा के द्वारा बिछाए मार्गों पर हमारी भटकन कम नहीं होगी। कीच से सने पग लेकर देवालय में प्रवेश का अधिकार नहीं पाया जाता। इच्छा और आवेगों के तूफान में भक्ति दीप दीपित नहीं हो सकता। सत्य, धर्म, अहिंसा, न्याय और प्राणिमात्र के लिए दया – ये दिव्य गुण हमारी आत्मा में स्वाभाविक हैं। जहाँ इन गुणों का अभाव है, जिस हृदय में ये नहीं हैं वहाँ मनुष्यत्व कहाँ? ऐसे पशुतुल्य मनुष्य के लिए कहीं शांत, स्थिर ठौर नहीं। और जब यहीं नहीं तो और कहीं, अन्य उच्च जगत में कैसे संभव होगा?

---

*मनुष्य का बौद्धिक ज्ञान-विज्ञान तब तक अधूरा रहेगा जब तक वह वेद की शरण ग्रहण नहीं करेगा, उसकी बुद्धि वैदिक प्रकाश की ओर उद्घाटित नहीं होगी। उद्घाटन अनिवार्य है। और वह आता है सत्याचरण से, सत्य के ग्रहण से। आत्मा में सचेतन होने से।*

## दिनचर्या

सप्ताह के अन्त के पहले से ही हम योजना बनाने लगते हैं कि इस रविवार को कैसे आनन्द मनाया जांये। कैसे हम इस बार पहले सप्ताह से अधिक मजे ले सकें। मजा खोजते-खोजते हम यहाँ तक पहुँच गये हैं। इतनी उम्र बीत चुकी है। लेकिन अभी तक भी हमारा ध्यान जीवन-लक्ष्य की ओर नहीं गया है। मानव आत्मा संसार में क्यों आती है, कहाँ से आती है, इसका प्रबंधक कौन है, उसका दर्शन कैसे संभव होता है। इस विषय में सोचना प्रारंभ नहीं किया। जैसा अपने चारों ओर दूसरों को देखते हैं, वैसा ही हम भी कर रहे हैं। कोई प्रश्न हमारे अंदर नहीं उठता। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, यह जगत कहाँ से आया है, इस संसार की रचना करने वाला कौन है, वह कहाँ रहता है, कैसे प्राप्त होता है, इत्यादि। मनुष्य को अपने विचारों में उत्थान लाना होगा। कुछ नया, मानसिक चेतना के पार, सोचना प्रारंभ करना होगा। जिस लीक पर वह सदियों से चला आ रहा है, उसका त्याग करना होगा। वह बदलनी होगी। चिंतन में नई दिशा अपनानी होगी। जीवन-धारा को नया मोड़ प्रदान करना होगा जो सीधा नये क्षितिजों में खुलेगा, नये अभियान का स्वरूप होगा।

---

## संकेंद्रित

मैंने अपने हृदय पर चाकू चलाये। कलेजे को कई बार चीरा। भावनाओं को भस्म किया। मोह को धक्के दिये। तथाकथित धर्म को दूर ठेला। मानवीय स्तर पर मानव कथित कर्तव्य को, मानवीय ढंग से पूरा नहीं किया। अवगुणों के साथ गुणों को भी त्यागा। समाज की आवाज के प्रति अपने कान बंद किये, रीति-रिवाज पीछे छोड़े, औपचारिकता को तिलांजलि दी। एक ही चीज मेरे सम्मुख थी, केवल एक ही चीज का मूल्य मेरे हृदय, मन और आत्मा में बसा था। सृष्टि में एक ही चीज महत्वपूर्ण थी। कैसे भी मैं अपने हृदय मंदिर को पूर्ण रिक्त करूंगा। वहाँ किसी भी चीज के लिए, चाहे दुनिया की, देश की और धर्म की दृष्टि में वह कितनी भी मूल्यवान हो, कोई स्थान नहीं रहेगा जिससे कि मैं वहाँ परम पिता परमात्मा की पावन प्रतिमा प्रतिष्ठित कर सकूं। जग जीवन धन, मेरे सर्वस्व के प्रभु, वहाँ आसन ग्रहण करें और मैं उनकी सेवा में, केवल उनके आदेश-पालन में यह जीवन – जो कि पूर्णतः उन्हें समर्पित होगा – जिस विधि उन्हें रुचे, यापन करूं।

*संसार में मेरा एक ही धर्म है, एक ही कर्तव्य, परमेश्वर का आदेश-पालन।*

---

## क्रांति

सत्संग में आनेवालों की भीड़ धीरे-धीरे बढ़ रही थी। अपनी-अपनी मंडली में मित्रगण बैठ रहे थे। मैं भी अपने मित्रों में आकर बैठ गया। मुझे देखते ही एक मित्र बोल उठे। "बड़ा मजा आया आज, तबियत खुश हो गयी।" वह किसी होटल में खा-पीकर आया था। मैंने कहा— मजा किसे आया मित्रवर? "मुझे श्रीमान्जी" उसने उत्तर दिया। मुझे अर्थात् ? उसे जो दिन में चार बार खाता-पीता है, या उसे जो खाते हुए को देखता है, उसका साक्ष्य करता है? मैंने प्रश्न भरी मुद्रा में उसकी ओर देखते हुए पूछा। इस पर वातावरण एकदम बदल गया, गंभीर हो उठा। मैंने कहा — मित्र ! समय आ गया है, हमें जागना चाहिये। सचेतन बनना चाहिये। चेतना के सामान्य स्तर से ऊपर उठ कर सत्ता के आंतरिक सत्य को पाना चाहिये। उसमें निवास करना, जीवन में उसे चरितार्थ करना ही संसार में मानव-जीवन-लक्ष्य है।

———

*आध्यात्मिक जीवन अभाव से पूर्ण जीवन को नहीं कहते। असंग्रह की वृत्ति के लिए भी उसमें स्थान नहीं है। आध्यात्मिक जीवन सब प्रकार, सब ओर से परिपूर्ण होता है। उसमें लौकिक तथा पारलौकिक सभी समृद्धियाँ प्रवाहित होती हैं।*

## शास्त्र अध्ययन

इस विश्व में एक आत्म-सत्ता कार्य कर रही है जो इन असंख्य दृश्यमान वस्तुओं में, इनकी आत्मा के रूप में विराजमान है। प्रकृति के विविध रूप, उनके कार्य, इसी से उत्पन्न होते हैं, इसी से चालित हैं। वही हम सब के हृदय में, शक्ति और शांति के रूप में स्थित है। परन्तु हम इसके प्रति सचेतन नहीं हैं। इसका मुख्य कारण है कि हमारा निवास अज्ञान में है, हम प्रकृति में निमग्न हैं। उससे पृथक नहीं किया। आत्मा में स्थित नहीं हुए। यही कारण है कि हमें अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं है। भीतर पर्दा है। सत्ता शुद्ध नहीं है। स्वभाव तथा प्रकृति की अशुद्धि ही पर्दा बनती है। जिसके द्वारा भगवान हमसे छिपे रहते हैं। अगर हम भगवान को पाना चाहते हैं तो हमें इन प्रकट रूपों के पीछे जाना सीखना होगा। इन रूपों के भीतर विद्यमान सत्य पर पहुँचना होगा और वहाँ पहुँचने का अर्थात् इस आत्म-अनुसंधान का मार्ग है अंतर्मुख होना। हृदय में डुबकी लगाना। जिसका व्यावहारिक रूप है– कर्मों को यज्ञ रूप में करना, प्रभु को समर्पित जीवन जीना, सब ओर उसे ही अनुभव करना। जब किसी वस्तु या मनुष्य से व्यवहार करें तो इस प्रकार, मानों हम उन्हीं परमेश्वर के साथ व्यवहार कर रहे हैं।

---

## भावी वैज्ञानिक – एक योगयुक्त व्यक्ति

मनुष्य की जो समस्या सहस्रों वर्ष पूर्व थी आज भी ज्यों की त्यों है। उसे न अपनी समग्र सत्ता का पूर्ण ज्ञान है, न विश्व सत्ता का। आत्मा, ईश्वर, अमरत्व के विषय में वह पहले भी अज्ञानी था और आज भी है। वस्तुओं के तथा अपने सत्य स्वरूप को देखने की दृष्टि न उसे पहले थी, न अब है। अपने भूतकाल को, भविष्य में होनेवाली घटनाओं को न पहले जान सकता था न आज जान सकता है। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया, जगत क्या है, किसकी रचना है, इस प्रश्न का उत्तर न उसके पास पहले था न अब है। हम मानते हैं उसने जीवन का स्तर ऊँचा उठाया है। प्राकृतिक शक्तियों पर अभूतपूर्व विजय प्राप्त की है। पृथ्वी तल को सुख वैभव से भर दिया और इलैक्ट्रोन जैसी शक्ति पर नियंत्रण किया। चन्द्रमा तक छलांग लगायी और सातों समुद्रों के तल को छू लिया। वैज्ञानिक उपलब्धियों को देखकर आज का मानव फूला नहीं समा रहा है। उसे अपने ऊपर गर्व है।

हम विज्ञान की उपलब्धियों की सराहना करते हैं और संसार के प्रति जो उसकी देन है उसके लिए आभारी हैं। लेकिन विज्ञान को इतनी जल्दी प्रसन्न नहीं होना चाहिये। थोड़ा समय और लेना चाहिये। यह देखने के लिए कि उसकी देन संसार को जो सुख प्रदान कर रही है, इस सुख

का परिणाम क्या होगा। मनुष्य जाति सही दिशा में उन्नति करेगी अथवा अवनति के कूप में गिरेगी। वह विलासिता में डूब जायेगी या कर्तव्य-पथ का अनुसरण करने को प्रेरित होगी। कर्तव्य-पथ, जो हमारे पूर्वजों के द्वारा, श्रुति शास्त्रों के द्वारा निर्धारित है। जिसपर आरूढ़ होकर हम जीवन का सुफल प्राप्त करते हैं। सीमित चेतना से ऊपर उठते हैं। पृथकत्व रूपी अज्ञान से बाहर आते हैं। विश्व-पुरुष का चेतना स्तर प्राप्त कर अपने मूल स्वरूप के साथ तादात्म्य लाभ करते हैं। अनंत ज्योति तथा आनंद से भरपूर अमृत-सिंधु पर हमारा अधिकार होता है। संसार में उसका अवतरण संभव बनाते हैं। और फलस्वरूप मानव जीवन को आत्मा के गुणों से प्रकाश, शांति, शक्ति, चेतना से ओत-प्रोत करते हैं।

देखना है कि इतनी महान शक्ति को प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य में कौन-सी वृत्तियाँ उभरेंगी, उच्च अथवा निम्न। कौन-से भाव जागेंगे— दैवी अथवा आसुरिक। विश्व-प्रकृति की किन शक्तियों का वह यंत्र होगा— सर्जनकारी अथवा विनाशकारी। वह वस्तुओं के आंतरिक सत्य के समीप होगा, अथवा दूर चला जायेगा। पदार्थों के बाह्य रूप को ही सब कुछ समझेगा या उनके अंतर्सत्य की भी खोज करेगा। मनुष्य के साथ व्यवहार में सर्वाधिक महत्व उसके शरीर एवं अहंकार को प्रदान करेगा या भीतर आत्मा को। उसके हृदय पर स्वार्थ-भाव शासन करेगा या

परोपकार। वह जगत को भोगों की सामग्री से भरपूर, भोग का क्षेत्र समझेगा या परमेश्वर की आत्म-अभिव्यक्ति के रूप में देखेगा। विज्ञान की देन के द्वारा प्राप्त स्वर्ग सुखों के समान मधुर भोगों में आत्म-कल्याण का पथ भूल जायेगा या उसे जीवन-लक्ष्य के रूप में चुनेगा। ये मौलिक प्रश्न हैं, जिनपर हमें विज्ञान के पीछे आंखें बंद कर चलने से पूर्व भली प्रकार विचार करना चाहिये। उसके दर्शन की चिंतन-धारा का गहनता के साथ अवलोकन करना चाहिये। हमें देखना है कि वैज्ञानिक की चेतना में लोकहित की, मानव-मंगल की भावना कहाँ तक है। क्या वह इसके द्वारा पूर्ण रूप से अधिकृत है ? वह संसार को किस दिशा में मोड़ प्रदान करने जा रहा है। उसके विचारों में, भावों में, प्रतिक्रियाओं में देवत्व कहाँ तक प्रकट है। हमारे भीतर छिपे सत्य को बाहर लाने में, जीवन में चरितार्थ करने में कहाँ तक सहायक सिद्ध होगा। कारण, आज संसार वैज्ञानिक के हाथ में है। मानव-जाति का भावी विकास उस पर निर्भर करता है।

अवश्य विज्ञान को मानव-जाति का चेतना-स्तर ऊँचा उठाने में, उसके हृदय पर पड़े पर्दे को, उसके मन के अंधकार को हटाने में सहायक होना चाहिये। जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उत्थान लाने के लिए, सर्वोच्च पूर्णता की ओर विकसित करने के लिए नया प्रकाश प्रदान करना चाहिये, नये रहस्यों को सम्मुख लाना चाहिये। तभी धरती

पर जीवन सुखी होगा। मानव सुख पाने की आशा से स्वर्ग की ओर नहीं ताकेगा। धरती माता की गोद को अपना घ़र मानेगा। उसे और अधिक ऊँचे सुख से, दिव्य वैभव से सजाने का प्रयास करेगा। अगर कहीं स्वर्ग है और वहाँ दिव्यता प्राप्त होती है तो वह उस दिव्यता के अवतरण को यहाँ संभव बनायेगा, उसके द्वारा धरती के जीवन को रूपांतरित करने का प्रयास करेगा। सांसारिक जीवन से, यहाँ के दुख-कष्टों से भागकर किसी ऊर्ध्व स्थित लोक में शांति खोजने के विचार की पकड़ से अपने आपको दूर रखेगा। वह भली प्रकार समझ जायेगा कि उसकी समस्या का समाधान धरती को छोड़कर अन्यत्र किसी दिव्य वैभवपूर्ण बैकुण्ठ में प्राप्त नहीं हो सकता। वह उसे यहीं, धरती पर खोजना होगा। मानव को उस चेतना-स्तर पर उठना होगा जहाँ वह पदार्थों तथा प्राणियों में छिपी दिव्यता को देख सके। जीवन में, कर्मों में, विचारों में उसे प्रवाहित कर सके। जिससे कि वसुंधरा का यह सुंदर तल सुख-शांति से, आत्मा के माधुर्य से भर उठे। अगर ऐसा नहीं, अगर विज्ञान संसार को स्थाई सुख-शांति प्रदान नहीं कर सकता, मनुष्य-मनुष्य के बीच भ्रातृत्व का भाव नहीं जगा सकता, सारी मानव-जाति को एकता के सूत्र में नहीं बांध सकता, युद्ध अथवा पारस्परिक कलह जैसी बीभत्स चीजों को पृथ्वी तल से धोकर एक सामंजस्यपूर्ण वातावरण प्रदान नहीं कर सकता, जिसमें सभी जातियाँ, सभी धर्म के लोग परस्पर

भाई-भाई की भांति हृदय खोलकर मिलें, तो उसके द्वारा चाहे हमारा जीवन कितना भी सुख-समृद्धि से भरपूर हो, कितनी भी सुविधाएँ प्रदान की जाती हों, हम उसे सही दिशा में सही प्रगति नहीं कहेंगे।

मानवता इस विचार को ग्रहण करे, उसके हृदय में यह भाव उपजे, इसके लिए उसे एक बहुत लंबे समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। शीघ्र ही हम इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि हमें विज्ञान की देन का, उसके द्वारा उपलब्ध शक्तियों का उपभोग आत्मा को समर्पित करने के पश्चात् ही करना चाहिये। विज्ञान की हर शक्ति का प्रयोग आत्मा से प्रेरित होकर करने से ही संसार सुख को प्राप्त होगा। इस महान शक्ति का उपयोग अगर ऐसे व्यक्ति के हाथों में रहता है, जिसमें अहंकार है, जिसकी चेतना सीमित है, जो मानव मात्र के मंगल की भावना से रहित है, जो संपूर्ण मानव जाति को एक पिता की संतान नहीं देख पाता, सारे संसार को एक परिवार नहीं समझता, जिसके स्वभाव में संकीर्णताएँ हैं, जिसने पक्षपात के भाव का त्याग नहीं किया, जो हर जाति के, हर धर्म के मनुष्यों को गले लगाने में समर्थ नहीं है, प्राणी मात्र के मंगल की भावना जिसके हृदय का सर्वोच्च भाव नहीं है, सत्य, दया, अहिंसा जिसके आदर्श नहीं तो निस्संदेह एक महान विनाश मानवता की नियति होगा। कारण, वर्तमान मानव अपने अहंकार के हाथों का खिलौना है। और जब तक वह अहंकार के द्वारा

प्रेरित होकर निर्णय लेगा, कर्म में प्रवृत्त होगा, तब तक विज्ञान के द्वारा ही नहीं, किसी भी मानवीय क्षमता के द्वारा, शुभ अथवा मंगलमय परिणाम प्राप्त होने की संभावना का उदय नहीं हो सकता। उसकी आशा नहीं की जा सकती।

विज्ञान की जन्मदात्री वैज्ञानिक की बुद्धि यह समझ रही है कि यह सब उसकी प्राप्ति है, उसकी खोज का परिणाम है। इसका अर्थ है कि वह अभी वस्तुओं के मूल सत्य से दूर है। जिसे प्राप्त कर हर व्यक्ति की यही मान्यता होती है कि सभी उपलब्धियाँ – चाहे वे अपने आपमें कितनी भी महान हों – किसी अदृश्य शक्ति की, दिव्य चेतना की, वस्तुओं में निहित सत्य की देन होती हैं, वस्तुओं में छिपे भागवत संकल्प की अभिव्यक्ति होती है। मानव जाति के प्रति सृष्टिकर्ता परमात्मा का उपहार होता है। हमें समझना है कि अपनी खोज के द्वारा, पुरुषार्थ के द्वारा हम केवल वही प्राप्त कर सकते हैं जो वस्तुओं में उनके अंतर्निहित सत्य के रूप में विद्यमान है, सृष्टि के पीछे कार्यरत भागवत संकल्प उस युग-विशेष के लिए निर्धारित करता है, चेतना के सर्वोच्च स्तर पर जगदीश्वर के द्वारा अनुमत्य है।

इस समय विज्ञान वस्तुओं के बाह्य स्वरूप के साथ व्यवहार कर रहा है। उसी के स्वभाव तथा क्षमताओं के विषय में उसने जानकारी प्राप्त की है। किन्तु हमें भूलना नहीं चाहिये कि ऊपरी सतह वस्तु का समग्र रूप नहीं

होता। भौतिक क्षमताएँ हमारी सत्ता की संपूर्ण शक्तियाँ नहीं होतीं। वस्तुओं का बाह्य स्वरूप केवल एक सतही सत्य है, आंशिक विवरण है। जबकि एक बहुत बड़ा भाग बाह्य आकार के परे, उसके पीछे रहता है, जिसकी क्षमताएँ अद्‌भुत हैं; कहीं अधिक हैं। लौकिक ही नहीं अलौकिक भी होती हैं।

हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, किया भी जाता है। किन्तु वास्तव में ज्ञान हमारे भीतर है। उसका उद्‌घाटन होता है। ऊपर से चेतनाएँ अवतरित होती हैं। प्रेरणाएँ ग्रहण की जाती हैं, अंतर्वाणी सुनने को मिलती है। पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता है। यहाँ मौलिक रूप में हमारा अपना कहने को कुछ नहीं, सब कुछ किसी अन्य शक्ति पर निर्भर करता है, कहीं और से आता है। उसका अवतरण होता है। अथवा हमारे भीतर अनावरण होता है। हमारे अंदर आत्मा है किन्तु हमारी बाह्य यांत्रिक चेतना को उसका ज्ञान नहीं। पर्दा हटता है। हमें उसका दर्शन होता है। इतना ही नहीं, हम देखते हैं कि हम सदा से वह थे। बाह्य सत्ता में निवास करते हुए भी हमारी सत्ता का एक भाग, आंतरिक भाग उसके साथ एक रहता था। अगर एक वैज्ञानिक विज्ञान की समस्त उपलब्धियों को बुद्धि की उपज मानता है तो इसका अर्थ है कि उसे बुद्धि का पूर्ण ज्ञान नहीं है। सर्व प्रथम हमें बुद्धि का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है। लेकिन हम देखते हैं कि बुद्धि के विषय में हमारा जो ज्ञान है, वह

सीमित है। हम बुद्धि की केवल ऊपरी सतह को, उसके बाह्य रूप को ज़ानते हैं। बाह्य तौर पर बुद्धि एक यंत्र है। एक ऐसा यंत्र – जिसकी गतिविधि, क्रिया-कलाप सब कुछ किसी अन्य शक्ति पर निर्भर करते हैं। जिसके बिना वह केवल एक मांस-पिण्ड है अन्य कुछ नहीं। उसमें अपना कोई मौलिक ज्ञान-कोश नहीं है। वह ज्ञान के स्पंदनों को ग्रहण करती है। ग्रहण कर सकती है, यही उसकी विशेषता है। यहीं वह मानव शरीर के अन्य भागों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अगर बुद्धि का अपना ज्ञान-कोश होता तो, जब चेतना देह से अपने आपको पीछे खींच लेती है तब भी बुद्धि सचेतन रहती। लेकिन, ऐसा नहीं है। सब अचेतन हो जाता है। इसका अर्थ होता है कि सब कुछ किसी भिन्न स्तर पर, किसी भिन्न चेतना-शक्ति पर निर्भर करता है। जो भी ज्ञान हम बुद्धि से प्राप्त करते या बुद्धि हमें प्रदान करती है उसका मूल उद्गम अन्यत्र है। ऊर्ध्वलोक के किसी अज्ञात सूक्ष्म, अनिर्वचनीय स्तर से आता है। बाह्य दृष्टि से इस स्तर और बुद्धि के बीच कोई तन्तु या कड़ी नहीं है। बुद्धि के सूक्ष्म कोशाणुओं के पीछे उनके अन्दर यह ज्ञान एक चैतन्य बिन्दु के रूप में विराजमान है। जहाँ वह अतिचेतन सत्ता अपने आपको केन्द्रीभूत करती है। यही बुद्धि की आत्मा है। जिसके निवास के लिए, जगत में जिसकी क्रिया संभव बनाने के लिए वह परम सत् इसमें छिपा बैठा है।

जब बुद्धि अंतर्निहित सत्ता को समर्पित होकर कर्म करना सीख लेगी वह अपनी सीमित क्षमता का अतिक्रमण करने में समर्थ होगी। अगर हम बुद्धि के पीछे इस आत्मा को, इस दिव्य सत्ता को देख सकें, इससे संबंध स्थापित कर सकें, हमारी बौद्धिक क्षमताएँ असीम हो उठेंगी।

यह विषय योग का है। योगी हुए बिना एक वैज्ञानिक कभी पूर्ण और सिद्ध वैज्ञानिक नहीं बन सकता। योग में ही सब कर्मों की चरम परिणति है। जीवन का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, योग के द्वारा ही अपनी परिपूर्णता प्राप्त करने में समर्थ होता है। कहीं दूर, अनंतता के गर्भ में हमें एक झांकी-सी प्राप्त हो रही है। हम वैज्ञानिक को अतिमानवों की प्रथम पंक्ति में खड़ा देख रहे हैं।

---

*हे मानव ! हे भव-उपवन के स्वर्णिम पुष्प ! व्यक्तिगत इच्छा की पूर्ति के स्थान पर भागवत संकल्प की चरितार्थता ही तेरे जीवन का स्वरूप हो। तेरी आत्मा का प्रसाद तुझे प्राप्त हो। ऋषियों का आशीर्वाद तेरे जीवन में फूले-फले। तेरे हृदय में अनादि वेद प्रकट हो।*

## दुर्बल क्यों

जीव भगवान के पास पहुँचना चाहता है। भगवान भी उसे अपने समीप देखना चाहते हैं, अपनी ओर खींचते हैं। समीप आने में उसकी सहायता करते हैं। कारण यह जीव उनका अपना अंश है, अपना स्वरूप है। लेकिन भगवान के समीप पहुँचना, उन्हें प्राप्त करना, अत्यंत कठिन है। पथ लंबा है, मार्ग ऊँचा-नीचा, टेढ़ा-मेढ़ा है। मानों भयानक जंगल में से, अंधकार भरी सुरंगों में से होकर जाना होता है। इसीलिए शास्त्र कहते हैं कि यह मार्ग सबके लिए नहीं है। दुर्बलों को इससे दूर रहना चाहिये। वे इसे एक अनावश्यक आपद कह कर बीच में ही छोड़कर भाग खड़े होंगे। सामर्थ्यवान और साहसी व्यक्ति ही इसे अंत तक तय करने में सफल होते हैं। लेकिन पहली बात जो यहाँ स्पष्ट कर देनी चाहिये। वह है कि यह दुर्बलता अथवा सबलता शारीरिक नहीं है। उससे इसका कोई विशेष संबंध नहीं है। मनोमय अथवा प्राणमय पुरुष की सामर्थ्य पर भरोसा करके भी हम इस मार्ग पर बहुत दूर तक यात्रा नहीं कर सकते। तब इस सबलता और दुर्बलता का संबंध किससे है, कहाँ है इसका मूल, कहाँ है इसका उद्गम ! इसका संबंध हमारी आत्मा से है जो हमारे हृदय केंद्र में निवास करती है। इस आत्मा के लिए हम दुर्बल और सबल इन शब्दों का प्रयोग करते अवश्य हैं, परंतु हमारा यह कथन शोभन नहीं है।

कोई भी आत्मा जिसने मानव रूप में कुछ ही जन्म बिताए हैं, जिसके भंडार में अनुभवों का बहुत बड़ा संग्रह नहीं है, वह अविकसित है और हम अर्थात् शास्त्रों में, उसे दुर्बल कहते हैं। कारण सृष्टि चक्र में आत्मा अनुभव के लिए आती है। अनुभवों के द्वारा ही वह उन्नत होती है। अनुभव ही उसकी निधि है। दूसरी ओर, जो आत्मा युगों से चलकर बहुत से जन्मों में से गुजर चुकी है, उसका भंडार अनुभवों से भरपूर है। उसे इस बात का ज्ञान है कि कब, कहाँ, किस स्थिति में क्या करना चाहिये। उसने सब प्रकार की शिक्षाएं प्राप्त की हैं। सब अभ्यास किये हैं। सब अवस्थाओं में से गुजरी है। सृष्टि के विधान को, अपनी सत्ता के आंतरिक और बाह्य दोनों सत्यों को, प्रभु के संकल्प को, प्रकृति की गतिविधियों को, अहं और आत्मा के अंतर को, उनकी विपरीत धाराओं को वह जानती है, इन्हें देखने-समझने की दृष्टि उसमें है। वह सचेतन है। मानव प्रकृति में आवश्यक परिवर्तन लाने की शक्ति उसमें जाग चुकी है। अतः वह सबल कहलाती है। उसने मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं का अतिक्रमण किया है, जिनमें पड़कर, जिनकी दासता के कारण ही जीवन में मानव आत्मा दुर्बल कहलाती है।

---

## बाह्य दृष्टि – पत्र

जिस मनुष्य के स्वभाव में हम दुष्टता देखते हैं, उसे दुष्ट कहते हैं। शास्त्रों के अनुसार उसका यह दुष्ट स्वरूप उसकी पूर्ण सत्ता की अभिव्यक्ति नहीं है। उसकी सत्ता का यह पूरा विवरण नहीं है। वह इससे अधिक कुछ है। प्रत्येक मनुष्य के अंदर, चाहे वह कितना भी मूढ़ या दुष्ट स्वभाव वाला हो, उसकी सत्ता में कुछ दिव्य, दिव्यता से पूर्ण, ज्योतिर्मय भाग भी होते हैं। बाह्य सत्ता के पीछे उसकी आंतरिक सत्ता भी है। आंतरिक मन, प्राण तथा शरीर भी उसकी सत्ता के अंग हैं। ये अंतरात्मा के समीप हैं। बाह्य सत्ता के पीछे गहराई में निवास करते हैं। उसका प्रभाव ग्रहण करने के लिए उसके प्रति पर्याप्त मात्रा में उद्घाटित रहते हैं। एक भागवत उपस्थिति भी उसके अंदर है। अपने सच्चे स्वरूप में वह एक विकासोन्मुखी आत्मा है जो मन, शरीर, इंद्रियाँ आदि का धारणकर्त्ता, इनका स्वामी है। मनुष्य अभी वस्तुओं की अदिव्यता को अतिक्रम करने में समर्थ नहीं है, उनके पीछे, उनके परे, उनके भीतर छिपी दिव्य वस्तु का दर्शन करने की क्षमता भी उसकी स्वाभाविक वस्तु नहीं बनी है। उसकी सीमित दृष्टि वस्तुओं के बाह्य स्वरूप पर, आत्मा के इन आवरणों पर ही ठहर जाती है। इन्हें पार कर इनके अंदर छिपी दिव्यता को नहीं देख पाती। उसकी झलक प्राप्त करने में असमर्थ है।

आनेवाले युग का वातावरण भिन्न होगा। मनुष्य का चेतना-स्तर आध्यात्मिक होगा। मनुष्य अतिमानस से लाभान्वित होगा। उसे आंतरिक दृष्टि प्राप्त होगी, वह दिव्य दृष्टि से सम्पन्न होगा और फलस्वरूप वस्तुओं में छिपे सत्य को अनुभव करेगा, आकारों में निराकार के दर्शन करेगा। तभी उसकी दृष्टि सही होगी, समग्र होगी। उसका निर्णय आत्म-सत्य पर आधारित होगा, वह निर्भ्रांत पगों से आत्म-विकास के पथ पर अग्रसर होगा। संसार में उसे कोई वस्तु मूल रूप में मिथ्या, अशुभ तथा कुरूप दृष्टिगोचर नहीं होगी। जगत सत्यं शिवं सुन्दरम् की अभिव्यक्ति दिखायी देगा।

हमें भूलना नहीं चाहिये कि दूसरे व्यक्ति को अहंकारी कहने और देखनेवाला हमारे अंदर अहंकार ही होता है। दूसरों में दुष्टता हमें तभी तक गोचर होती है जब तक हम आत्म-विकास में पूर्णता उपलब्ध नहीं करते। उसकी प्राप्ति के उपरांत सर्वत्र सब ब्रह्म-रूप गोचर होता है। जगत के सब प्राणी, सब वस्तुएँ अपनी ही आत्मा के स्वरूप, अपने अभिन्न अंग प्रतीत होते हैं। सारी सृष्टि एक ही दिव्य तत्व की अभिव्यक्ति भासित होती है। जब हम अपने दिव्य स्वरूप में स्थित होते हैं, आत्मा की दिव्य दृष्टि से जगत को निहारते हैं, हमें सबके अंदर दिव्यता के दर्शन होते हैं और यह जगत एक अनंत दिव्यता में डूबा हुआ दिखायी देता है।

---

## आत्म-विकास – चरम अवस्था

कुछ मनुष्यों का कथन है – इस धरती पर जीवन में जैसे हम सबकी अपनी-अपनी नियति है, वैसे ही अपना-अपना लक्ष्य है। हम इस कथन को एक सिद्धान्त मानकर नहीं चल सकते। अगर इसमें एक आंशिक सत्य हो सकता है तो वह भी स्पष्टीकरण की मांग करता है। हम कह सकते हैं, मनुष्य का वर्तमान चेतना-स्तर, उसके आत्म-विकास का स्तर वही होता है, विकास के जिस स्तर पर हम गत जन्म में जीवन-यापन करते रहे, विकास-पथ पर अग्रसर होते रहे। उसी के फलस्वरूप, उसको आधार बनाकर और उसमें नये अनुभव के लिए, कुछ नये तत्वों के मिश्रण के साथ हमारा चैत्य पुरुष अवतरित हुआ है। इस विकास को हर व्यक्ति अपने ढंग से, अपने मार्ग से प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है। किन्तु, विकास का सर्वोच्च स्तर वही है जिसमें मानव-चेतना, परा-चेतना के साथ एकत्व लाभ करती है। वह मानव मात्र के लिए एक है। जिसे हम इस प्रकार व्याख्यायित करते हैं– अपनी सत्ता और जगत सत्ता के मूलभूत सत्य को पाना, उसमें निवास करना, उसे समर्पित रहते हुए जग-जीवन में चरितार्थ करना तथा दूसरों को चरितार्थ करने में अपनी सामर्थ्य के अनुसार, जहाँ तक संभव हो सहायता प्रदान करना।

नियति कोई ठोस बंधी-बंधाई वस्तु नहीं होती। जो एक बार निर्मित हो गयी और फिर परिवर्तित न हो। व्यक्ति-चेतना के परिवर्तित होते ही नियति परिवर्तित हो जाती है। बाह्य सत्ता के स्थान पर हम जब चाहें आंतरिक सत्ता में निवास करना प्रारंभ कर सकते हैं। अहंकार के स्थान पर आत्मा से चालित हो सकते हैं। जीवात्मा की चेतना से ऊपर उठकर ब्रह्म के साथ तादात्म्य लाभ कर सकते हैं। अपनी भाग्य-लिपि इच्छानुसार लिख सकते हैं। उसमें जब चाहें, जैसा चाहें परिवर्तन कर सकते हैं। किन्तु तब हम वही क्षुद्र, सीमित व्यक्ति नहीं रहते, जो अब तक था। उसी प्रकार नहीं सोचते जैसे एक अंतर्दृष्टिहीन व्यक्ति सोचता है। हम भूमा, विराट होते हैं। उसी दृष्टि से स्वयं को, जगत को देखते हैं। हमारा संकल्प भागवत संकल्प के साथ एक हो जाता है। वही निर्णय लेता है। विभाजन समाप्त हो जाता है। परम एकत्व में निवास हमारी स्थिति होती है। हमें समग्र दृष्टि प्राप्त होती है जो वस्तुओं को उनके समग्र रूप में देखती है।

---

*आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए, आत्म-विकास को सर्वांगीण बनाने के लिए, सम्पूर्ण सत्ता में भागवत चैतन्य का अवतरण संभव बनाने के लिए, संसार में भागवत यंत्र बनने के लिए सचेतनता की परम आवश्यकता है।*

## मुक्त चेतना

मुक्त चेतना में उठने के लिए, उसमें निवास करने के लिए, चित्त के संस्कारों से, स्वाभाविक दुर्बलताओं से, अवचेतना में स्थित हर जन्म में दुहराई जाने वाली आदतों से छुटकारा पाना पहली शर्त है। मुक्ति के विषय में हमारी धारणा, आत्मा की और मनोमय पुरुष की मुक्ति तक ही सीमित नहीं है। हम शारीरिक चेतना को भी मुक्त कर सकते हैं और अब जबकि अतिमानस अपनी शक्ति और चेतना के साथ पृथ्वी पर अवतरित हो चुका है, मानव सत्ता का आमूल चूल रूपांतर अर्थात् उसके शरीर का रूपांतर भी संभव है। रूपांतर से हमारा अर्थ शरीर के दिव्यीकरण से है जो अतिमानस की दिव्य ज्योति को ग्रहण करने पर संभव होता है। इसके लिए शरीर को सचेतन होना होता है। सचेतन शरीर में ही अवतरण संभव है। अवतरण की प्रक्रिया पूर्ण होते ही हमारी यांत्रिक सत्ता अर्थात् हमारे मन, प्राण, शरीर ज्योतिर्मय हो जाते हैं। यही रूपांतर है।

प्रश्न है उद्घाटन लाने का, जो शरीर की कोशिकाओं के सचेतन होने से ही संभव है। सचेतन कोशिकाएं अपने रूपांतर के लिए, अपने दिव्यीकरण के लिए स्वयं अभीप्सा करती हैं।

जो हम इस समय हैं, वही रहते हुए कुछ अन्य नहीं बन सकते। कुछ अन्य बनने के लिए हमें वर्तमान चेतना स्तर

को ऊँचा उठाना होगा। हमारी शारीरिक चेतना जिस भाव को लिए युगों से चली आ रही है वही रहते हुए वह अपने अंदर उद्घाटन नहीं ला सकती। उसकी वर्तमान जीवन गति धारा निम्नगामी है। उसमें अभी तक आत्म-सत्य आत्म-ज्योति, आत्म-चेतना का निवास नहीं है। अगर शारीरिक चेतना को आत्म-ज्योति की ओर खुलना है तो उसे एक ओर अपनी गति-धारा ऊर्ध्वमुखी करनी होगी और दूसरी ओर अब तक की चली आ रही सब आदतों को छोड़ना, इंद्रिय सुख-भोगों के पाशविक ढंग को त्यागना, इनके संस्कारों की गहरी जमी जड़ों को काट फेंकना होगा। उनसे ऊपर आना होगा तभी वह रूपांतर के महत्त्व को समझेगी, उसमें रूपांतर के लिए अभीप्सा जगेगी।

तत्पश्चात निम्न प्रकृति में ग्रस्त होना, सुख की प्राप्ति के लिए इंद्रियों में उतरना, उसके लिए असंभव हो जाता है। सुख की प्राप्ति के साधन, उसके स्थान, उनका स्तर सब उच्च और दिव्य हो जाता है।

---

*वस्तु-स्थिति के विषय में पूर्ण सचेतन होना, जीवन-तरी को जीवन-स्वामी के हाथों में सौंप देना अपने आपमें एक महान उपलब्धि है।*

8

## प्रश्नोत्तर

"क्यों हर व्यक्ति आंतरिक पथ-प्रदर्शन प्राप्त नहीं करता ?"

क्योंकि मनुष्यों की आंतरिक सत्ता पर पर्दा है। जो लोभ, मोह, आसक्ति, स्वार्थ-भावना, अहंकार तथा कामनाओं का, निम्न प्रकृति की अशुद्ध वृत्तियों का, काम-क्रोध आदि का बना होता है। जब मनुष्य अपने भावों में पूर्ण शुद्ध हो जाता है, आत्मा की पवित्रता उसके विचारों में, कर्मों में प्रवाहित होने लगती है, अंदर-बाहर सच्चाई में निवास स्थायी हो जाता है, भागवत विधान के प्रति सचेतन रहता हुआ जीवन का हर श्वास लेता है, तब उसका हृदय आवरणहीन हो जाता है। वह पथ-प्रदर्शन ही नहीं, शक्ति तथा सहायता भी प्राप्त करता है और वह सब भी जो जीवन में, शब्द के सही अर्थ में सफल होने के लिए आवश्यक है।

---

*मनुष्यों के आंतरिक तथा बाह्य व्यक्तित्व के बीच पर्दा है जो आंतरिक ज्योति को बाह्य व्यक्तित्व पर नहीं पड़ने दे रहा है। जिसके कारण उनका जीवन अज्ञान की शक्तियों के प्रभाव में रहता है, उन्हीं के संकल्प की चरितार्थता है। कम ही ऐसे हैं जिनके अंदर स्थित मुक्त चेतना का सुखद पवन उनके जीवन-आंगन में बहता है। जिनके कर्मों में आत्मा की विशालता की झांकी मिलती है।*

## विशालता में सच्चा सुख

यह सृष्टि परमात्मा की रचना है। उनका दिव्य कर्म है। इसका मूल दिव्य है। भले ही इस समय सृष्टि अपने मूल उद्‌गम से दूर है, उसकी दिव्यता इसमें प्रतिबिम्बित नहीं है। किन्तु शास्त्र हमें समझाते हैं कि संसार अज्ञान से ज्ञान की ओर, अदिव्यता से आत्मा की दिव्यता की ओर गति कर रहा है। यहाँ हर मनुष्य प्रगति के पथ पर है और एक दिव्य शक्ति के द्वारा– जो कि उसे अपने अंदर धारण किये है और उसके हृदय में विद्यमान है– एक निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा है। किन्तु लक्ष्य अभी दूर है, आत्मा का सत्य, उसकी चेतना मानव मन में तथा जीवन में प्रकट नहीं हुई है। यही कारण है कि यहाँ कुछ भी अपने सही स्वरूप में नहीं है, जिसमें पदार्थों का मूल, उनकी आत्मा झलकती हो।

इस दिव्य शक्ति को संसार भगवान कहता है और इसकी प्राप्ति के मार्ग को, जिसके द्वारा मनुष्य इसके साथ संबंध स्थापित कर सकता है, धर्म कहकर पुकारता है।

आत्म-विकास के प्रारंभ के जन्मों में जब मनुष्य ने गंभीरता पूर्वक सोचना सीखा ही था, धर्म ने ही उसे पशुता-मिश्रित जीवन से ऊँचा उठाया था। वह शिक्षा प्रदान की थी जिसके द्वारा उसे कर्तव्य का बोध हुआ, जीवन-मार्गों पर सचेतन होकर उसने चलना सीखा। जिसका व्यावहारिक रूप इस प्रकार था – केवल अपने लिए तथा अपने परिवार के लिए

ही नहीं, दूसरों के लिए, पड़ोसी के लिए, देश के लिए, संपूर्ण जाति के लिए जीना ही मनुष्य के जीवन का सही, सच्चा स्वरूप है। हम सब एक पिता की संतान हैं। अतः परस्पर मिलकर चलना, व्यवहार में भ्रातृत्व के भाव को प्राथमिकता प्रदान करना हमारा प्रथम कर्तव्य है।

हमारे हृदय में सभी धर्मों के लिए श्रद्धा है। संसार के सभी मनुष्यों को, चाहे वे किसी भी धर्म के अनुयायी हों, हम प्रेम करते हैं। हमें किसी से शिकायत नहीं। मन्दिरों में पूजा, आरती-वन्दन आदि, गिरजाघरों की प्रार्थनाएँ, मस्जिदों में नमाज आदि के लिए हमारे हृदय में स्थान है। सभी धर्मों में हमारी आस्था है। कारण, हमारी मान्यता है — अगर हम किसी भी धार्मिक शिक्षा में सच्चाई के साथ, पक्षपातरहित होकर उतरते हैं तो उसकी मौलिक शिक्षा में वे सब तत्व पाते हैं जो मनुष्य के जीवन को, उसके विचारों को तथा कर्मों के स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध होते हैं। हर धर्म में प्रभु के प्रति मानव के प्रेम-प्रकटन पर बल है, प्रभु-प्राप्ति का उपाय है, उसका महत्व बताया गया है। ऐसा कोई धर्म-शास्त्र नहीं जिसमें भ्रातृत्व को, परस्पर प्रेम को, दया की भावना को त्याज्य कहा है। सभी धर्मों में हिंसा-द्वेष की, निर्दयता तथा पापकर्म की निन्दा की गयी है। सभी धर्म एक स्वर से पृथ्वी के वातावरण को अधिक से अधिक शांतिमय तथा पवित्र बनाये रखने पर बल देते हैं और सत्य, अहिंसा, न्याय की घोषणा करते हैं।

मनुष्य धर्म को आत्मोन्नति में सहायक एक पथ के रूप में स्वीकार करता है। एक उच्च ज़ीवन जीने की, आध्यात्मिक बनने की अभीप्सा उसके हृदय में है। जिसे लेकर वह धर्म की शरण ग्रहण करता है, धार्मिक बनता है। धर्म एक संस्कार के रूप में उसे अपने वंश से, परिवार से प्राप्त होता है। इसी धर्म के द्वारा वह अपने जीवन में तथा संसार में शांति एवं उन्नति की आशा करता है। हम देख रहे हैं कि हर धर्म-प्रवर्त्तक अपने समय में, उस युग-विशेष में, मानव के चेतना-स्तर के अनुसार अपनी शिक्षा को एक रूप प्रदान करता है, आत्म-कल्याण का, विश्व-शांति का उपाय बताता है। निस्संदेह वह अपने विचारों में तथा अभीप्सा में सच्चा है और अपने ढंग से संसार में ईश्वर का, सत्य का साम्राज्य चाहता है। पृथ्वी के वातावरण को आत्मिक प्रेम में डूबा, आध्यात्मिक प्रकाश से ओत-प्रोत देखना चाहता है। जिसमें सब परस्पर मिलकर चलें, परस्पर प्रेम करें, परस्पर वृद्धि को प्राप्त हों। इस धर्म के दो रूप हैं आंतरिक तथा बाह्य। मानव जाति को जो स्वरूप प्रदान किया जाता है वह धर्म का बाह्य स्वरूप होता है। धर्म के आंतरिक स्वरूप से, उसकी आत्मा से हमारा परिचय नहीं कराया जाता। अनुभव कहता है कि केवल धर्म के बाह्य रूप का अनुसरण करने से हम अपनी अंतस्थ आत्मा को तृप्त नहीं कर सकते। अपनी अभीप्सा में सच्चा होते हुए भी दिव्य शांति, ज्योति, प्रेम तथा आनन्द आदि आध्यात्मिक वस्तुओं को केवल

धार्मिक बनने से नहीं प्राप्त कर सकते। कारण, धर्म-रूप वृक्ष अभी अपने विकास की अवस्था में है। उसने अभी तक पूर्णता प्राप्त नहीं की, यही कारण है कि वह कोई अमृतमय फल संसार को प्रदान करने में समर्थ नहीं हुआ। सभी धर्मों में सत्य है किन्तु वह आंशिक है। उसे पूर्णता प्राप्त करनी है। सभी धर्मों का मूल आत्मा है, आध्यात्मिकता है किन्तु धर्मों के वर्तमान स्वरूप में वह अभी अभिव्यक्त नहीं हो पायी है। यही कारण है कि जिन्होंने वस्तुओं के आंतरिक सत्य को पाना चाहा, भागवत शांति, प्रेम आदि दिव्य वस्तुएँ उपलब्ध की अथवा उपलब्ध करने का प्रयास किया वे सब आध्यात्मिकता की ओर मुड़े। परमात्मा की शरण ग्रहण की। धर्म उनकी आत्मा की प्यास बुझाने में समर्थ नहीं हो पाया। हम कहेंगे कि धर्म अधिक से अधिक एक सोपान होता है और उच्च वस्तुओं की ओर इंगित कर सकता है, उन्हें प्रदान नहीं कर सकता। अगर हम मानव-कृत शास्त्रों की दृष्टि से धर्मों को देखें तो प्रत्येक धर्म में कुछ ऐसी चीजें मिश्रित हैं जो त्याज्य हैं। साथ ही अन्य कुछ ऐसी वस्तुओं का अभाव है, आत्मा की चिर प्यास बुझाने के लिए धर्म के बाह्य स्वरूप में जिनका होना अनिवार्य है। हम इन नवीन तत्वों को– जो कि वास्तव में प्राचीन ही हैं– धर्म के मूल में, एक अंतर्वेग के रूप में ऊपर आते, धर्म के बाह्य स्वरूप में अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रयास करते देख रहे हैं। यह वेग अपने स्वभाव में अदम्य है। संसार की कोई शक्ति उसे

नहीं दबा सकती। हम कह सकते हैं कि उसकी चरितार्थता संसार की अवश्यंभावी नियति है। शीघ्र ही मनुष्य समझेंगे कि धर्म के नाम पर वे जो कर रहे हैं वह पर्याप्त नहीं है। उन्हें गहराई में जाना होगा। वस्तुओं के आंतरिक सत्य के साथ व्यवहार करना सीखना होगा। धर्म की आत्मा में प्रवेश करना होगा और वे देखेंगे कि शांति, प्रकाश, प्रेम, न्याय आदि दिव्य वस्तुएँ धर्म उन्हें प्रदान कर सकता है, जो कि उसकी आत्मा में निहित हैं और अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक्षारत हैं। अगर हम चाहें उन्हें अपने व्यवहार की वस्तु बना सकते हैं। किन्तु धर्म के मूल को समझे बिना हम धर्म के स्वरूप को नहीं समझ सकते। किसी पदार्थ को समझने के लिए उसके मूल को समझना अनिवार्य होता है। वास्तव में सृष्टि का मूल कारण जो एकमेवाद्वितीयम् आत्मा है उसकी प्राप्ति के पश्चात् ही हम धर्म के सही स्वरूप को जानने में समर्थ होते हैं। आध्यात्मिक सत्य पर आधारित हुए बिना धर्म एक ढांचा है।

वर्तमान वैज्ञानिक युग के विज्ञ जनों से हम आशा करते हैं कि वे सृष्टि का मूल जो सर्वज्ञ चेतना है, उसके किसी एक ऐसे स्तर को अवश्य प्राप्त करेंगे जो अपने स्वरूप में प्राणी मात्र को आलिङ्गन में बांधेगी। जिसमें उठकर मानव मात्र एक दूसरे का मंगल चाहेगा, एक-दूसरे के सुख में सुख अनुभव करेगा। एक दूसरे की उन्नति को देखकर हर्षित होगा और सब प्रकार से अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करने के लिए

उद्यत रहेगा। इसके लिए चाहे उसे किसी प्रकार का भी बलिदान करना पड़े, अपने सुख की आहुति देनी पड़े, अपनी व्यक्तिगत उन्नति की अभिलाषा को भी एक ओर रखना पड़े, वह सब भांति, सब समय तैयार रहेगा। हम इस विचार में पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। कारण, यह विचार हमारा अपना ही नहीं है, हमारे पूर्वजों ने बहुत पहले इस विचार पर चिंतन किया था और उनके पश्चात् आनेवाले, उनके पद-चिह्नों पर चलनेवाले महापुरुषों के द्वारा इसका वरण किया गया है। निकट भविष्य में हम मानव अभीप्सा को इस दिशा में फलीभूत हुआ देख रहे हैं। कारण, सृष्टि-रूप जो विकासोन्मुखी दिव्य सत्ता है उसके हृदय में यह संकल्प पूर्ण वेग के साथ उठ रहा है और जिसकी चरितार्थता आज नहीं तो कल संसार देखेगा।

---

*भगवान ने दिव्य तथा अदिव्य दोनों प्रकार की वस्तुओं की, दोनों प्रकार की सत्ताओं की रचना की है, लीला के लिए यह अनिवार्य था। फिर भी शास्त्र एक अद्‌भुत घोषणा करते देखे जाते हैं– "जो प्रभु को हृदय की गहराई से पुकारते हैं, उनके भक्त हैं, उनकी सहायता होती है। वे एक विशेष कृपा के पात्र होते हैं।*

## शिकायत समाधान नहीं – पत्र

हममें से कुछ हैं जिन्हें संसार से शिकायत है। वे जहाँ जाते हैं, जिनसे व्यवहार करते, उन सबसे शिकायत है। शास्त्रों की दृष्टि में इसका कारण उनका अहंकार, उनकी सीमित दृष्टि है, जिस दृष्टि से ये जगत को देखते हैं वह मानसिक है। और जो ये देखते हैं, जिससे ये व्यवहार करते हैं वह व्यक्ति की बाह्य सत्ता है, । हमें यह सीखना है कि व्यक्ति और घटनाओं का सत्य ऊपरी सतह पर नहीं होता। इनको प्रेरित-चालित करने वाली शक्तियाँ उनके पीछे, परे, सूक्ष्म स्तर पर होती हैं। हमारी बाह्य सत्ता के पीछे, हमारे आंतरिक भागों में, वह दृष्टि, वह क्षमता है कि वे सतही दृश्यों के पीछे पहुँच कर व्यक्ति और घटना का सत्य जान सकें। इतना ही नहीं, अगर हमें किसी व्यक्ति के व्यवहार में, उसके मनोभाव में, घटना-चक्र में कोई परिवर्तन लाना होता है, तो हमें इन्हीं शक्तियों को प्रभावित करना होता है। अथवा इन्हें पराजित करना होता है। और यह तभी संभव है जब हमारा स्तर इन शक्तियों के स्तर से ऊँचा हो। शास्त्र कहते हैं कि अगर हम इस संसार में कुछ भी परिवर्तन लाना चाहते हैं तो हमें विश्व चेतना स्तर पर सचेतन होना होगा। विश्व पुरुष की चेतना में उठकर हम निर्भ्रांत रूप से यह जान सकते हैं कि भागवत संकल्प क्या है, किसी परिस्थिति-विशेष में प्रभु क्या

चाहते हैं। हम उनके दिव्य संकल्प की अभिव्यक्ति में अपना सहयोग प्रदान करते हैं और यथोचित परिणाम लाभ करते हैं।

---

*चेतना का विकास बिलकुल दूसरी वस्तु है, दूसरा स्तर, दूसरा धरातल है। मानसिक विकास चेतना का विकास नहीं कहलाता। बौद्धिक विकास भी चेतना का विकास नहीं है। व्यक्ति-चेतना हमारे अंदर एक बूंद के समान है जो विकास करती हुई सिंधु का रूप धारण करती है, जो चेतना जगत का मूल, इसका उद्‌गम है, उसके साथ तादात्म्य लाभ करती है। उस चेतना में हम परम सत्ता के साथ एक होते हैं। उस स्तर पर सब आत्म-एकत्व में बंधे हैं। सब अपने हैं। अपने से भिन्न कुछ नहीं। कोई पराया नहीं दिखायी देता। सबकी समस्या मेरी अपनी समस्या होती है। दूसरों के दुख मेरे अपने होते हैं। मैं सबमें होता हूँ। सब घटनाएँ मेरे अंदर होती हैं। एक अखंड अद्वितीय अस्तित्व, जो कि सर्वोच्च है, सबका मूल है और जिसका यह सब विस्तार है, उससे हम एकाकार होते हैं। पूर्ण तादात्म्य की स्थिति ही हमारी सत्ता का चरम सत्य है।*

## अतिमानसिक विकास

अपनी दीर्घ एवं महान तपस्या के द्वारा श्रीअरविन्द ने एक नई चेतना को पृथ्वी पर उतारा है। जिसे उन्होंने अतिमानस नाम प्रदान किया है। अतिमानस एक भागवत चेतना है और आज पृथ्वी के वातावरण में विद्यमान है। जो उसकी ओर उन्मुख हैं वे अपने अंदर एक महान परिवर्तन, एक महती जागृति अनुभव कर रहे हैं। वे देख रहे हैं कि संसार में गत अल्प दशकों में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुई हैं जो अपनी स्वाभाविक गति में संसार को भयंकर विनाशपूर्ण स्थिति में डाल सकती थीं। लेकिन किसी अदृश्य शक्ति ने उन्हें अद्‌भुत ढंग से नियंत्रित किया और संसार को विनाशकारी परिणाम से बचा लिया। विशेष रूप से जो लोग श्रीअरविन्द की शिक्षा के अनुसार साधनामय जीवन यापन कर रहे हैं उनका अनुभव है कि एक नई चेतना धीरे-धीरे उनके अन्दर की अदिव्यता को दिव्यता में रूपांतरित कर रही है, उनकी सीमित व्यक्ति-चेतना को अपनी सीमाएँ अतिक्रमण करने में, जीवन और जगत के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण अपनाने में सहायता प्रदान कर रही है।

अतिमानसिक चेतना के प्रथम अवतरण में ही हमारे अंदर एक महान उत्थान आता है। हमारी प्रकृति के सब दोष-त्रुटियाँ, दुर्बलता समाप्त हो जाती हैं और जीवन आत्मिक दिव्यता, शांति और आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। निम्न प्रकृति से

सर्वथा ऊपर उठ जाते हैं और अतिमानसिक ज्योति के सहारे उसका दिव्यीकरण साधित करते हैं। सर्वप्रथम हमें अपनी बाह्य सत्ता में, यांत्रिक सत्ता में अतिमानस के प्रति उद्घाटन लाना होता है। अतिमानस का अवतरण सत्ता के निम्न भागों में संभव बनाना होता है। उसके उपरान्त ही उनका रूपान्तरण साधित होता है।

मानसिक एवं प्राणिक सत्ता के रूपांतर या अतिमानसीकरण के पश्चात् श्रीअरविन्द मानव शरीर के दिव्यीकरण की भी बात करते हैं। उनके अनुसार सर्व प्रथम मनुष्य को अपने यंत्रों की चेतना को, यहाँ तक कि शारीरिक चेतना को भी अतिमानस में उठाना, अर्थात् उसका आरोहण संभव बनाना होता है। उसके उपरांत ही हमारी सत्ता में अतिमानसिक ज्योति अवतरण करती है और फलस्वरूप हमारा रूपांतर संभव होता है। मनुष्य का शरीर जब अतिमानसिक ज्योति में रूपान्तरित हो जाता है, उसे अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए विश्व-प्रकृति की शक्तियों पर निर्भर नहीं करना पड़ता। उनसे ऊपर उठ जाता है। वह बिना भोजन, बिना श्वास-प्रश्वास बना रहता है। कारण, रूपांतर के पश्चात् वह हाड़-मांस या स्नायुमंडल आदि का बना नहीं रहता वरन् अतिमानसिक ज्योति में रूपांतरित हो जाता है। इस प्रकार ज्योति से निर्मित हमारा शरीर जरा, व्याधि और मृत्यु से मुक्त हो जाता है। संसार की कोई शक्ति उसे क्षति पहुँचाने में समर्थ सिद्ध नहीं होती।

अतिमानसिक ज्योति में रूपांतरित व्यक्ति अतिमानव कहलायेगा। अतिमानव दिव्य मानव होगा। उसका स्वाभाविक चेतना-स्तर विश्व-चेतना-स्तर होगा। जीवन आत्मा की दिव्यता में, आत्मा के द्वारा प्रवाहित एक सुरीले संगीत के समान होगा। हर क्रिया एक दिव्य सामंजस्य से ओत-प्रोत, एक अनुपम सौंदर्य से पूर्ण होगी। आत्मा के एकत्व के विधान से उसके कर्म संयोजित होंगे, एकत्व ही उनका प्रेरक तथा आधार होगा और इसी में होगी उनकी चरम परिणति।

वर्तमान मानव जीवन परस्पर विरोधी नाना तत्वों से भरपूर है। वह दृष्टिहीन है। इसमें आत्मा की ज्योति तथा चेतना का अभाव है। इसे अज्ञान की, निम्न प्रकृति की शक्तियाँ चला रही हैं। इसका ज्ञान, निर्णय करने की इसकी क्षमता, मन पर आधारित है। मन सत्य को, जगद्व्यापी शाश्वत सत्ता के सत् संकल्प को पूर्णतः समझने में समर्थ नहीं होता। हृदय स्थित भगवान हमसे क्या चाहते हैं, उनकी क्या इच्छा है वह नहीं जानता। इसके लिए उसे किसी उच्च अध्यात्म भावापन्न मानस स्तर का सहारा लेना होता है। सामान्य मन, जो आत्म-चेतना की ओर उद्घाटित नहीं है, अपनी परिधि का अतिक्रमण करना जिसका लक्ष्य नहीं है, इच्छा-आकांक्षाओं की पूर्ति में ही व्यस्त रहता है। उसी को जीवन समझता है। इससे परे भी कुछ है, इससे परे भी चेतना का एक विशाल अतिमानसिक स्तर है जहाँ मानव

की सब समस्याओं का समाधान सदैव उपस्थित है, जिसका अवतरण संभव बनाने से हमारे सब मार्ग ज्योतिर्मय हो जाते हैं। चेतना परिशुद्ध हो जाती है। जिसकी परिकल्पना करने में भी हम आज असमर्थ है। विशेष रूप से चेतना के उन स्तरों की परिकल्पना करने में, जहाँ पहुँचकर मानव जीवन एक पृथक् वस्तु नहीं रहता, विश्व-पुरुष का चेतना-स्तर हमारा चेतना-स्तर होता है।

अतिमानसिक चेतना में हमें जीवन, जगत तथा आत्मा को देखने की समग्र दृष्टि प्राप्त होती है। विचारों में विशालता आती है। हम पदार्थों के बाह्य रूपों को पार कर उनके पीछे, उनके भीतर सद् वस्तु का दर्शन करते हैं। आंतरिक सत्ता पर्दे से बाहर आकर हमें अधिकृत करती है। जीवन की हर गतिविधि को सत्य की अभिव्यक्ति का स्वरूप प्रदान करती है। हम सब कुछ अंतस्थ देव के हाथों में छोड़ने के लिए प्रेरित होते हैं। जहाँ हमारा जीवन सत्यं शिवं सुन्दरम् की अभिव्यक्ति होता है। उसमें विरोधी तत्व नहीं रहते, हम अज्ञान से, क्षुद्र अहं से ऊपर होते हैं। सब कुछ उस परमोच्च सत्ता के आनन्द की अभिव्यक्ति का अबाध प्रवाह होता है। जहाँ पहुँच कर मानव जीवन आत्मिक सुख-शांति से, ज्ञान व शक्ति से परिपूर्ण हो जाता है; परम आत्म चैतन्य में हम निवास करते हैं, जीवन में रहते जीवन मुक्त होते हैं।

श्रीअरविन्द सृष्टि-विकास-क्रम में विश्वास करते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार पृथ्वी पर प्रथम वनस्पति

का प्रादुर्भाव हुआ, तत्पश्चात् पशु-पक्षी आये और उसके उपरान्त मनुष्य आया, उसी प्रकार अब मनुष्य जाति में से अतिमानव जाति का विकसित होना सुनिश्चित है। वर्तमान मनुष्य अपनी सीमित चेतना के साथ, सृष्टि-विकास-क्रम में अन्तिम शिखर नहीं हो सकता। मनुष्य के बाद अतिमानव का आना अवश्यंभावी प्रकरण है। अतिमानव जाति मनुष्य जाति से उतनी ही श्रेष्ठ होगी जितनी मनुष्य जाति पशु से है। हम कह सकते हैं अतिमानव पृथ्वी पर भगवान का प्रतिनिधि होगा, जगत को परम सत्य की अभिव्यक्ति के लिए तैयार करेगा और मानव जाति का चेतना-स्तर ऊँचा उठाने में, आध्यामिक सत्य की ओर उसे उद्घाटित करने में एक दिव्य पथ-प्रदर्शक एवं सहायक होगा।

मानव जाति अभी अतिमानस के अवतरण के विषय में अनभिज्ञ है। श्रीअरविन्द की इस दिव्य देन से अपरिचित है। लेकिन जिन्हें दृष्टि है अथवा जो स्वाभाविक रूप से या निज व्यक्तिगत प्रयास के द्वारा इस नयी चेतना के प्रति उद्घाटित हैं, वे देख रहे हैं कि अतिमानसिक चेतना मानव-द्वार खटखटा रही है। उसे जगाने की, आत्मा की दिव्यता में उसका रूपान्तर करने की इच्छा से उसके जीवन में प्रवेश करना चाह रही है। कहीं-कहीं उसके ऊपर दबाव भी डाल रही है। वर्तमान अज्ञानमय जीवन के प्रति जो असंतुष्टि का भाव यत्र-तत्र हम देख रहे हैं, एक उच्च आध्यात्मिक जीवन जीने की अभीप्सा जो मानव मन-हृदय को अधिकृत करती

देखी जा रही है, इसी दबाव का परिणाम है। जो अपने अन्दर इस अवतरण को, इसकी अभिव्यक्ति को पूर्णतः सफल बनाने के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर चुके हैं, अपने सुखों की आहुति दे चुके हैं, पार्थिव जीवन में अतिमानसिक परिपूर्णता ही जिनके जीवन का लक्ष्य बन चुका है, जिनकी प्रकृति में सब कुछ भागवत सत्य, ज्ञान और प्रेम पर आधारित है, कोई भी वस्तु इस दिव्य अभिव्यक्ति में बाधक नहीं है, जो विश्व-रूपान्तर के कार्य को आगे बढ़ाने में संलग्न हैं, वे संसार में ईश्वर के चुने हुए यंत्र हैं । भावी अतिमानसिक युग के वे ही पुरोधा हैं।

एक दिव्य अतिमानसिक परिपूर्णता पृथ्वी पर अभिव्यक्त होने जा रही है। जो मानव के आध्यात्मिक रूपान्तरण में, उसके आत्मिक विकास में सहायक सिद्ध होगी। मानव मन अभी उसके आगमन में संदेह कर रहा है, परन्तु यह उसके द्वारा उपलब्ध की जा सकेगी। अवश्य ही इसके लिए मन को अपनी सीमाओं से बाहर आना होगा, अपने आपको अतिक्रमण करना होगा, प्रचलित धारणाओं से ऊपर उठना होगा, पूर्ण शुद्ध, विशाल एवं नमनीय बनना होगा। इन गुणों के धारण करने से उसके अन्दर आवश्यक ग्रहणशीलता आयेगी जो उसे अतिमानसिक ज्योति ग्रहण करने की क्षमता प्रदान करेगी।

श्रीअरविन्द ने कहा है कि व्यक्ति एवं समाज दोनों की समस्याओं का अन्तिम समाधान मानवता के आध्यात्मिक

रूपान्तरण में ही साधित हो सकता है। जब तक मनुष्य आध्यात्मिक नहीं बन जाता, उसकी समस्या, एक के बाद दूसरी, सदा बनी रहेगी। मानव प्रकृति का पूर्ण आध्यात्मिक रूपान्तर ही समाधान है।

मानव जाति को इस सत्य के प्रति सचेतन बनाना, उसे इस ओर मोड़ना, उसके अन्दर इस आध्यात्मिक रूपान्तर के लिए अभीप्सा पैदा करना, वर्तमान अज्ञान-अंधकारमय जीवन के स्थान पर एक उच्च प्रकाशमान जीवन में उठने के लिए प्रेरित करना वह कर्म है जिसे करने की प्रेरणा हमारे अंदर उठ रही है और वह उठनी ही चाहिये।

---

*स्वयं प्रकाशित ज्ञान-रूपी सूर्य हम सबके हृदय में स्थित है। जब हम उसके ऊपर पड़े अज्ञानजनित पर्दे को विदीर्ण कर देते हैं, हमारे मार्ग अंतर्ज्योति से प्रकाशमान हो जाते हैं। हम निर्भ्रांत पगों से अपने गंतव्य की दिशा में– जो कि परम सत्ता का साक्षात्कार है– आगे बढ़ते हैं।*

## धैर्य व सहनशीलता

हमें अपने स्वभाव में धैर्य एवं सहनशीलता इन दोनों गुणों को धारण करना है। धैर्य एवं सहनशीलता आत्मा के गुण हैं। जिन व्यक्तियों के स्वभाव में इन गुणों का अभाव है वे आवेश में आकर तुरंत प्रतिक्रिया करते हैं। बिना गहराई से सोचे-विचारे निर्णय लेते हैं। फलस्वरूप पीछे पछताते हैं। धैर्य एवं सहनशीलता साथ-साथ रहते हैं। किसी चीज के विषय में तुरंत प्रतिक्रिया न करने का, तुरंत निर्णय न लेने का अर्थ है हम किसी उच्च-स्तरीय आदेश की अथवा उत्तर की प्रतीक्षा में हैं। उस समय हमारी चेतना अपनी वर्तमान सीमा को अतिक्रम करने का प्रयास करती है। वह एकाग्र होकर सोचती है, भीतर जाती है और आत्म-प्रभाव में, आत्म-नीरवता में अपनी समस्या का हल खोजती है। अथवा, वह ऊपर की ओर उठती है और चेतना की ऊँचाइयों पर समाधान प्राप्त करने का प्रयास करती है। ये ही वे क्षण होते हैं जिनके लिए हमें कुछ समय चाहिये। अगर हमारे अंदर धैर्य नहीं तो हम अपनी चेतना को सोचने विचारने के लिए, उसे कहीं दूसरे स्तर पर पहुँचने के लिए समय नहीं दे पाते। हम अपने अभ्यास के कारण तुरंत उत्तर देते हैं, तुरंत प्रतिक्रिया करते हैं। हमारे पास किसी उच्च या आंतरिक हस्तक्षेप के लिए प्रतीक्षा करने का समय नहीं होता। हम शीघ्रता में होते हैं और हमारा मन समाधान के

रूप में जो निर्णय लेता है हम वही करते हैं। इस प्रकार की प्रतिक्रिया बिलकुल़ अचेतन तथा ऊपरी स्तर की होती है। जिसमें न कोई गहन सत्य होता है और न उच्च प्रकाश। बिना सत्य और प्रकाश की क्रिया कभी सही नहीं होती। वह हमारी आत्मा की, हमारे सच्चे स्वभाव की अभिव्यक्ति नहीं होती। जिसका अर्थ है एक व्यर्थ-सी निरर्थक चेष्टा। हमारे स्वभाव में धैर्य और सहनशीलता की परम आवश्यकता है क्योंकि जहाँ ये गुण हैं वहाँ शीघ्रता नहीं होती। हमारे पास हर चीज के लिए पर्याप्त समय होता है। हम अपनी सत्ता की गहराई में, अथवा चेतना के उच्च स्तरों पर, शांतिपूर्वक, प्रसन्नमन समस्या का हल खोजने में समर्थ होते हैं।

---

*दूर हृदय की गहनतम गहराई में एक वरदान हर मानव-आत्मा के लिए सुलभ है, जो अत्यंत सावधानी के साथ सुरक्षित रखा गया है। हम जब चाहें उसका उपयोग कर सकते हैं और तथाकथित नियति को बदल सकते हैं। प्रश्न है वहाँ पहुँचने का और उसके उपयोग की विधि को जानने का। उसके पश्चात् सब सुख ही सुख है। वह विषय योग साधना का है। योग के द्वारा हम वहाँ पहुँच सकते हैं, विधि जान सकते हैं।*

## आत्म-संतुष्टि — एक अंध कूप

जो अपने आपमें संतुष्ट हैं, अपनी उन्नति, स्थिति और प्रगति को देखकर तृप्ति अनुभव कर रहे हैं, उन्हें हमें कुछ नहीं कहना है। अपनी सत्ता के विषय में तथा जगत सत्ता के विषय में, जो अस्पष्ट धारणा या आंशिक ज्ञान मनुष्य को है, जो उसे ही सब कुछ मान रहे हैं, जो मानसिक चेतना की परिधि में बंद हैं, उससे बाहर आना, उससे परे जाकर किसी उच्चतर स्तर को उपलब्ध करना नहीं चाहते उन्हें भी हमें कुछ नहीं कहना है। जिन्हें संसार की, दूसरे मनुष्यों की चिंता नहीं, धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य, शुभ-अशुभ का ध्यान नहीं, जो वर्तमान से संतुष्ट हैं और आगे खोज नहीं करते, खोज करना जिनके जीवन का न अंग है न लक्ष्य, मानव का धरती पर क्या कर्तव्य है, वह कहाँ से आया है, क्यों आया है, उसका गन्तव्य क्या है और वह कैसे उपलब्ध हो सकता है, परम शांति, मुक्ति, आनंद, आत्म-स्वातंत्र्य शब्द मात्र ही हैं अथवा ये किसी चेतना की अभिव्यक्ति भी हैं, इनकी यथार्थता कहाँ है, उसका स्वरूप क्या है और उसका दर्शन कैसे संभव होता है ! ईश्वर, आत्मा, अमरता, विश्व-चेतना, दिव्य परिपूर्णता, अतिमानवता, स्व-सत्ता का अतिक्रमण और एक दिव्य वस्तु में इसका रूपांतरण क्या मानसिक परिकल्पनाएँ ही हैं, अथवा इनके पीछे कोई सत्य-स्थिति, भाव या अर्थ विद्यमान है— ये सब प्रश्न

जिनके मन-बुद्धि में हलचल, हृदय में असंतुष्टि उत्पन्न नहीं करते, जो सहज भाव में इच्छाओं की पूर्ति, खान-पान, सुख-भोग को ही मानव जीवन समझते हैं कि मानव-आत्मा के संसार में आगमन का यही उद्देश्य है, इतना मात्र ही जगत है और इसके लिए ही सृष्ट किया गया है, यही यहाँ, इस संसार में अंतिम, अधिक से अधिक महान प्राप्ति है ; इस प्रकार के विचारों में जो बद्ध हैं और विचारों की इस कारा से बाहर झांकना नहीं चाहते – उन्हें भी हमें कुछ नहीं कहना है। प्रायः मनुष्यों में किसी उच्चतर वस्तुओं के लिए अभीप्सा कम ही देखने को मिलती है। वे अपनी वर्तमान स्थिति से संतुष्ट हैं और अगर ऐसा मार्ग उनके सम्मुख प्रशस्त किया जाये, जिसके द्वारा जीवन उत्थान लाभ करे, उसमें दिव्यता प्रवाहित हो, तो वे किसी प्रकार का सहयोग प्रदान करने से हिचकिचाते हैं, पीछे हट जाते हैं। यही कारण है कि हर युग में महापुरुष इसी निर्णय पर पहुँचते हैं – "हमें जो करना है हम करेंगे, मनुष्य सहयोग प्रदान करें अथवा न करें। उनसे किसी प्रकार की कोई आशा न रखते हुए, जहाँ तक संभव है जो सोये हुए हैं उन्हें जागना हमारा कर्तव्य है, हम जगाते रहेंगे, स्वकर्तव्य का पालन करते रहेंगे।"

भले ही आज हमारे चारों ओर संसार और स्वयं हम भी महान अज्ञान में पड़े हुए हैं, जहाँ प्रकाश की किरण धुंधली-सी चमकती है, तो भी हमें कोई परेशानी नहीं होती

! प्रतीत होता है हमें जड़ता ने पूर्ण रूप से अधिकृत कर लिया है। लेकिन जिनका जन्म सचेतन है, जिन्होंने विचारपूर्वक, योजना के साथ, समय की गति को, संसार की परिस्थिति को, विश्व के निकट भविष्य की संभावनाओं को देखकर जन्म ग्रहण किया है, जो एक निश्चित कर्म के लिए, निर्दिष्ट लक्ष्य को दृष्टिकोण में रख कर जन्मे हैं, जिनके सम्मुख एक विशिष्ट कर्म है, अभीप्सा की अग्नि हृदय में प्रज्ज्वलित है, निश्चय, वह उन्हें किसी भी व्यक्तिगत प्राप्ति से, बाह्य सुख-समृद्धि अथवा उत्कर्ष से संतुष्ट नहीं होने देगी और सदा आगे ही आगे – वर्तमान विकास की प्राप्त अवस्था से एक उच्चतर विकास की ओर – प्रेरित करती रहेगी, आत्म-साक्षात्कार की ज्वलंत प्यास, सनातन अमृत-सिंधु में निवास की सतत अभिलाषा उनमें जागृत रखेगी। जो सम्पूर्ण विश्व के उत्थान की चिंता में रातों जागते हैं, जिन्हें मानव-जाति का कष्ट, उसकी अज्ञानता, स्वार्थ-भावना में उसका पतन असह्य है और जिसे देखकर अपना सुख भी काँटों की तरह चुभता है – मानवता के सच्चे हितैषी – ये ही सही अर्थ में मनुष्य कहलाने के अधिकारी हैं। मानव-चेतना-स्तर की संकीर्णता, स्वभाव की तुच्छता, पारस्परिक व्यवहार में नीचता देख कर, प्रचलित धर्मों के स्वरूप के प्रति, धार्मिक व्यक्तियों की कट्टरता के, उनकी रूढ़िग्रस्त, हठी मनोवृत्ति के प्रति पूर्ण असहयोग ही मानों जिनके जीवन का अंग बन गया है, जो वर्तमान्

सामाजिक रीति-रिवाजों में परिवर्तन देखना चाहते हैं, प्राचीनतम वैदिक संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठापित करना चाहते हैं। इस महान रूपांतर की संसिद्धि के लिए, भागवत संकल्प जिनके व्यक्तित्व के रूप में मूर्तिमंत हो उठा है, जो मानव-जीवन को उससे सुशोभित, प्रचोदित करना प्रथम कर्तव्य मानते हैं, जिसके द्वारा कि मानव-जीवन एक बार फिर आत्म-सत्य पर आधारित हो सके, उसका व्यवहार दिव्य प्रेम से पूरित, उसकी दृष्टि से विशालता, हृदय से आत्मीयता प्रतिबिम्बित हो सके। स्वर्ग-सम वातावरण को पृथ्वी पर स्थापित करने की अभीप्सा जिनके मन में है, सब प्रकार सुखी संसार का सुनहरा सपना जिनके दृगों में है, जो यह भली प्रकार समझ गये हैं कि धरती पर उनका जन्म ग्रहण करना, उनके अपने लिए नहीं है, व्यक्तिगत सुख-सुविधा जुटाने के लिए, व्यक्तिगत शांति, मुक्ति के लिए नहीं है, वरन् मानवता के लिए है, जगत रूप में परमात्मा के लिए है– पृथ्वी के वातावरण में उन साधनों को जुटाने के लिए है जिनके द्वारा मानव आत्मा का कल्याण साधित होता है, वह अपने विकास-स्तर की उच्चतम ऊँचाइयों पर उठने में सफल होती है– अन्यथा उनके आगमन का कोई अर्थ नहीं, औचित्य नहीं – ये ही वे नर-पुंगव हैं, इतिहास जिनके चरित्र, जिनके बलिदानों की गाथा स्वर्णाक्षरों में अंकित करता है, हर देश-माता जिन्हें जन्म प्रदान कर अपने आपको धन्य समझती है। युग-युग में पृथ्वी की आत्मा

जिनकी प्रतीक्षा करती है। जिनके लिए प्रभु से प्रार्थना करती है कि उन्हें शीघ्रातिशीघ्र जन्म ग्रहण करने की प्रेरणा प्रदान करें। जिसे हम सार-रूप में इस प्रकार वर्णित करेंगे—वर्तमान से असंतुष्ट, स्वर्णिम भावी युग के आगमन हेतु नवीन पथ प्रशस्त करनेवाले, जिनका जन्म तथा जीवन अपने लिए नहीं वरन् मानवता के लिए होता है, जो स्वार्थ-भावना की संकीर्ण परिधि से सदा बाहर हैं और उस चेतना में निवास करते हैं जो प्राणी मात्र का भार उठाने, उसे अपने आलिंगन में बांधने के लिए सदा उद्यत है — उनकी सुखदायी उपस्थिति से हे प्रभो ! तेरी इस तपस्वी वसुधा का यह सुन्दर उपवन सदा सजीव, सुहावना रहे।

———

*एक दिन मनुष्य को असंतोष घेरता है। जीवन के जिस स्वरूप में वह निवास कर रहा था, इंद्रिय सुख ही जिसमें प्रमुख था, उसे काटने-कचोटने लगता है। उसकी अपनी आदतें उसे असह्य हो उठती हैं। वह जीवन के वर्तमान स्वरूप से ऊपर उठना चाहता है। व्याकुलता उसकी प्रेरक होती है। जिस स्थिति में हृदय-द्वार खुलता है, वह यही है।*

## आत्म-संतुष्टि – सच्चा स्वरूप

हमारी आध्यात्मिक सत्ता, हमारा सच्चा व्यक्तित्व, आत्म-अभिव्यक्ति की जिस पूर्णता के लिए प्रयास कर रहा है, जन्म और मृत्यु के इस जुए को युगों से जिस महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वहन कर रहा है, वह बाह्य जीवन की सुख-समृद्धि और सफलता नहीं है। वह अपने पीछे एक स्वयं सत्, परम पुरुष को अनुभव करता है और जानता है कि व्यक्ति और विश्व दोनों की सत्ता का मूलभूत कारण परम पुरुष, परमात्मा है। किन्तु यह विश्व, जैसा कि हम इसे देख रहे हैं, परमात्मा की सीधी अभिव्यक्ति नहीं है। इन रूपों की सृष्टि आपात् निश्चेतना से हुई है। निश्चेतना या निर्ज्ञान, चेतना का परिसीमन है, आत्म-संकेंद्रण है। निश्चेतना, चेतना का वह प्रयास है जो अपनी आपात् स्थिति से विकसित होती हुई अपने सत्य स्वरूप को प्राप्त करने के लिए प्रयास कर रही है। जैसे अज्ञान वह ज्ञान है जो अपने अंदर सुप्त ज्ञानमूर्ति को प्राप्त करने के लिए बल लगा रहा है। सृष्टि में जो भी पदार्थ हैं उन सबके अंदर दिव्य पुरुष की उपस्थिति है। वह पुरुष अपनी आत्म-अभिव्यक्ति के लिए सतत प्रयासरत है, वस्तुओं तथा परिस्थितियों पर दबाव डाल रहा है। मानव-आत्मा, चैत्य पुरुष इस विषय में सचेतन है और इसी लिए केवल बाह्य व्यक्तित्व तथा सतही जीवन की उन्नति से संतुष्ट नहीं है।

10

बाह्य सफलताएँ उसके हृदय को गहराई तक हर्षित नहीं कर पाती। प्राणिक, इंद्रिय-संबंधी, सुखमय जीवन उसे संतुष्टि प्रदान नहीं करता। विश्व-विजेता होकर भी वह भीतर बैठा पराधीन-सा, गहन मनन में निमज्जित-सा, त्रिगुण-रूपी सिंधु में गोते खा रहा है। एक सनातन सत् तत्व जो आनंदमय है, उसके स्वरूप का उपादान द्रव्य है। वह स्वयं परमात्मा का अंश है और उन्हीं के संकल्प की अभिव्यक्ति वह जगत में सर्वत्र देखना चाहता है। उसकी चिर अभिलाषा है कि पदार्थों में छिपा सत्य, सृष्टिकर्त्ता जगदीश्वर का संकल्प, यथाशीघ्र प्रकट हो। पदार्थ मात्र उसे चरितार्थ करे।

अगर हम चाहें अपने भीतर अंतरात्मा की इस भूख को भुलाने की, इस अभीप्सा को दबाने की कोशिश कर सकते हैं और फलस्वरूप एक उच्च आध्यात्मिक जीवन के स्थान पर सुख-समृद्धि से युक्त, विलासिता से भरपूर जीवन, जिसे शास्त्रों में अज्ञानमय जीवन कहा है– यापन कर सकते हैं। लेकिन हमारा यह प्रयास हमें बहुत दूर तक ले जाने में सफल नहीं होगा। क्योंकि सृष्टि में सभी सृष्ट वस्तुओं के भीतर, उनके पीछे एक दिव्य विधान, एक विकास-क्रम विद्यमान है। एक दिव्य उपस्थिति वहाँ प्रतीक्षारत है। जो हर वस्तु को, हर प्राणी को उसकी सत्ता के सत्य की ओर प्रेरित कर रही है। एक तीव्र अंतर्वेग के रूप में वस्तुओं को भीतर से उनके आत्म-धर्म की ओर, उनकी पूर्णता की ओर, उनके मूल की ओर ठेल रही है, गन्तव्य की ओर अभिमुख होने

के लिए उन पर दबाव डाल रही है। हम चाह कर भी इसकी ओर सदा के लिए पीठ नहीं फेर सकते। हमारे अंदर जो भी अचेतन है, जिस रूप में भी प्रकृति हमारी सत्ता पर लिपटी है – चाहे वह कामनाओं के रूप में है या अहंकार के – कितना भी उसने हमारी सत्ता को अदिव्यता से, कुरूपता से, मिथ्यात्व से, अहंकारिक भावों से भरपूर कर रखा हो, परम पुरुष की यह उपस्थिति सृष्टि में उनका अंश-रूप यह जीवात्मा और जीवन के दिव्यीकरण का उनका संकल्प सब बाधाओं को पार कर एक दिन अपना लक्ष्य अवश्य सिद्ध करेगा। प्रभु-संकल्प पृथ्वी पर चरितार्थ होगा, अज्ञान तिरोहित होगा, पार्थिव जीवन में आत्मा की दिव्यता बहेगी। आत्मा की दिव्यता में रूपांतर साधित होगा। यह श्रीअरविंद और श्रीमाताजी का आश्वासित वचन है। हमारे लिए, संपूर्ण मानव जाति के लिए स्नेहसिक्त सत्य संदेश है।

साधक हो या सिद्ध, आत्म-संतुष्टि नहीं, प्रभु-आदेश-पालन, उसकी चरितार्थता ही हमारे जीवन का स्वरूप होना चाहिये।

---

*कितने सौभाग्यशाली हैं वे मनुष्य जो संसार में सब प्रकार सुखी होते हुए भी प्रभु-प्राप्ति को जीवन-लक्ष्य के रूप में चुनते हैं। वे भी परम सौभाग्यशाली हैं जो आत्म-उपलब्धि के पश्चात् जग-मंगल हित जीवन यापन करते हैं।*

## प्रभु प्रसन्नता – सबसे कठिन, सबसे सरल ( पत्र )

आपकी अभीप्सा, प्रभु में आपकी भक्ति, आत्म-साक्षात्कार के लिए आपकी प्यास सराहनीय है। दीप शिखा की भांति सारा जीवन परम पिता के प्रेम में जलती रही। जग-जीवन के क्षण-भंगुर तुच्छ सुखों की ओर से मन को मोड़कर प्रभु चरणों में लगाया। तपस्या की। समर्पित जीवन जीया। कभी तृप्त न होनेवाली कामनाओं की आहुति दी। संक्षेप में कहें तो अपनी ओर से कोई कमी न रखी, सभी शर्तें पूरी कीं, सब नियमों का पालन किया। हर वस्तु का मूल्य चुकाने को उद्यत रहीं।

परंतु इतने पर भी प्रभु प्रसन्न न हुए। दर्शन न मिला। अंतर्द्वार न खुले। आत्मिक शांति और संतोष दूर ही रहे। जीवन-सरिता उस अनंत अमृत-सिंधु की ओर बहते-बहते क्षीण हो चली। किनारा न मिला, दूर ही बना रहा। आज भी दूर ही है। संसार के सभी सहारे एक-एक करके अनुपयोगी सिद्ध हुए। किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं थी जो लक्ष्य दिखा सके। किनारे पर पहुँचा सके। मानव कर प्रभु के दिव्य कर में थमा सके।

मीराबाई के जीवन में भी गिरधर गोपाल की प्राप्ति को छोड़कर अन्य कोई चाह, कोई चाव, कोई व्यसन नहीं था। उमंग नहीं थी। सदैव सब कुछ शांत था। ऊपरी सतह पर हलचल नहीं थी। कोई चंचलता नहीं थी। आडम्बर या दिखावा नहीं था। अंतर केवल इतना ही है – मीरा के गिरधर गोपाल, उसके जन्म-जन्म के स्वामी, उसके

तन-मन-आत्मा के पति, उसके आंतरिक और बाह्य जीवन के प्रभु, उसके परमेश्वर– बचपन से ही उसे पथ-प्रदर्शन करते थे। मीरा का जीवन इसी आंतरिक गुरु के पथ-प्रदर्शन पर चला। इसी आंतरिक प्रियतम की प्रेमिका वह जीवन-भर रही। जगत के बाह्य ठाठ-बाट, सुख, ऐश्वर्य, आकर्षण, उसकी दृष्टि में कुछ नहीं थे। उसके लिए सारे जगत के आकर्षणों का केंद्र एक-मात्र कन्हैया ही थे।

चैतन्य महाप्रभु, प्रभु के लिए तभी तक रोते-तड़पते रहे जब तक जगन्नाथपुरी में उनकी साधना की धारा पूर्णतः अंतर्मुखी न हो उठी। वही घड़ी अब तुम्हारे सामने है। जीवन में जो न हो सका, अब कर सकती हो। यह एक भागवत मुहूर्त है। नई चेतना पृथ्वी पर अवतरित हुई है। विश्व-व्यवस्था में नई शक्तियाँ, जिन्हें हम अतिमानसिक शक्तियाँ कहते हैं, क्रियाशील हैं। अतः इस भागवत मुहूर्त में सभी अप्राप्त की प्राप्ति संभव है।

हम संसार में रहते हुए ही बिना जीवन और जगत का त्याग किये, भगवान को प्राप्त कर सकते हैं। एक ऐसी मनश्चेतना हमें प्राप्त करनी है, चेतना के एक ऐसे स्तर पर हमें उठना है, जो सब में, सब के पीछे प्रभु को देखे। जिसमें संसार अपने आंतरिक सत्य के साथ भासित होता है। आत्मा की अभिव्यक्ति के रूप में गोचर होता है। जहाँ सब एक दिव्य विधान के अनुसार गतिशील है। सब मधुर है, आनंदमय है। इस स्थिति की प्राप्ति हेतु कहीं बाहर

दौड़-धूप नहीं करनी है। केवल अंतर्मुख होना है। आत्मा की ओर उद्घाटित रहना है। जिस अनंत आनंदमय पुरुष को, अमृत-सिंधु को हमें पाना है उसकी प्राप्ति का, उसमें प्रवेश का द्वार हमारे हृदय में है। इसीलिए हमें बार-बार कहा जाता है "अपने आपको अर्थात् अपनी चेतना को चारों ओर से एकत्रित कर शांत, निश्चल-नीरव होकर अपने हृदय केंद्र में डुबकी लगाओ !" कारण हमारे लिए विश्वसत्ता का केंद्र हमारी यह व्यक्तिगत सत्ता है और इस व्यक्ति सत्ता का केंद्र हमारा हृदय है। यहीं हमारी अंतरात्मा है, जिसके हृदय में, जिसके पीछे परमात्मा आसीन हैं। हमें उनकी उपस्थिति की अनुभूति होती है। हम उनमें, उनकी अनंतता में प्रवेश पाते हैं।

हमारे हृदय में सब कुछ है। परम पुरुष का अनंत आनंदमय अक्षय भंडार हमारे हृदय में है। अगर किन्हीं कारणों से, वातावरण की प्रतिकूलता से, आस-पास के जगत की प्रतिक्रियाओं से, अर्थात् इन सबके कारण, तुम्हारा मन शांत नहीं होता तो प्रभु से प्रार्थना करो। प्रभु करुणामय हैं। दीनबंधु हैं। कृपा के सागर हैं। अवश्य तुम्हारी प्रार्थना सुनेंगे। तुम्हारे ऊपर कृपा बरसायेंगे। तुम कृपा की पात्र बनोगी। अपने हृदय में ऐसा विश्वास उत्पन्न करो। जीवन पथ पर इसी श्रद्धा के साथ आगे बढ़ो। मन में अभीप्सा, हृदय में तड़प का उठना और दूसरी ओर, प्रभु-प्रेम का उदय – जिसका व्यावहारिक रूप होता है – सांसारिक वस्तुओं

में मोह और आसक्ति का अभाव – सुंदर लक्षण है, अनिवार्य स्थिति है। बिना आत्म-ज्ञान् में स्थित हुए, बिना अनासक्ति का भाव अपनाये हमारी मानसिक और प्राणिक प्रकृति की, हमारी इंद्रियों की चेतना संसार के विषय-भोगों से ऊपर उठ कर आत्मा की मुक्त चेतना में प्रवेश नहीं कर सकती। जब तक जीवन नौका आसक्ति-रूप रस्से से बंधी है, तब तक आत्म-साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर होना संभव नहीं। आसक्ति के रस्से को काटो और अपनी जीवन-नौका प्रभु के हाथ में छोड़ दो। भव-सिंधु में यात्रा करने का यही शास्त्रोक्त विधान है। हमें चाहिये प्रभु-चरणों में बैठें, एकाग्र रहें, आदेश की प्रतीक्षा में घड़ियाँ गुजारें, केवल प्रभु आदेश पालन को कर्तव्य रूप में चुनें। हम देखेंगे कि सब सही ढंग से, सही समय पर सुसम्पन्न हो गया।

अपने भीतर आत्म-शक्ति का संवरण करो। निराशा की दलदल में पड़कर तुम आत्म-विश्वास खो बैठी हो। अपने मन और हृदय में अदम्य बल और दृढ़ विश्वास उत्पन्न करो। अब तुम्हें वही नहीं रहना है जो अब तक थी। तुम अकेली नहीं हो। अपने आपको कभी अकेली मत समझो। प्रभु तुम्हारे साथ हैं। जीवन-नौका के कर्णधार वे स्वयं हैं। उन्हें अधिकाधिक पुकारो। जीवन-भार उन्हें सौंप दो। जीवन उन्हें, उनके अनुसार चलाने दो।

तुम अपनी ओर से कोई निर्णय मत लो। शांत बनी रहो। अपने आपको पूर्ण उद्घाटित रखने का प्रयास करो। आत्मा के साथ सानिध्य की अभीप्सा सतत बढ़ती रहनी चाहिये। आत्मा की ओर मुड़ी रहो। जीवन-धारा उसी ओर बहे। एक-एक विचार उधर ही जाये। जगत के व्यापारों में अधिक मत पड़ो। उनमें बहुत उलझना साधना की प्रारंभिक अवस्था में श्रेयष्कर नहीं होता। जब तक सत्ता का सत्य प्राप्त न हो जाये, हमारी सब वृत्तियाँ अंतर्मुखी होनी चाहियें। हर गतिविधि अंतर्प्रेरित, एक बार यह स्वाभाविक हो जाये, एक बार हम आत्म-सत्य में स्थित हो जायें, प्रभु-पथ-प्रदर्शन हमें प्राप्त होने लगे, उसके पश्चात् एक ही कार्य शेष रहता है, प्रभु को पूर्ण समर्पण। तब कर्ता हम नहीं रहते। निर्णय हमारा नहीं होता। जीवन, जीवन-स्वामी का होगा, हमारा नहीं। तन-मन में वे निवास करेंगे। संपूर्ण सत्ता उनकी होगी। अगर हमारा अस्तित्व रहेगा तो वह केवल एक यंत्र के रूप में।

---

*हे मनु की संतति ! व्यक्ति-चेतना का अतिक्रमण कर ! देख ! अपनी दिव्य भुजाओं को फैलाए सृष्टिकर्ता परमात्मा तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अपनी जीवन-दिशा को उनकी ओर मोड़ और उन्हें प्राप्त हो। यही मानव-जीवन का साफल्य है।*

## मूल तत्व

एक अनंत चेतना शक्ति है, जिसकी अनंत अवस्थाएँ हैं। युग-युग में महापुरुषों ने, ऋषि-मुनियों ने, पैगम्बर और अवतारों ने उसका विभिन्न नाम और रूपों में पूजन किया और उसकी प्राप्ति के साधन भी भिन्न-भिन्न बतलाये और धारण किये। वैदिक तथा औपनिषदिक काल के पश्चात् प्रायः सभी सिद्ध पुरुषों और आचार्यों ने जो साधन बतलाये उनमें अंतिम और मौलिक पद्धति यही थी कि बाह्य, सांसारिक जीवन को त्याग कर आन्तरिक, आत्मिक जीवन यापन किया जाये और मन, शरीर तथा इंद्रियों की क्रियाओं को न्यूनतम करके अंतरात्मा को विश्वात्मा में या परमात्मा में लय किया जाये।

निस्संदेह, इससे उन आत्माओं को एक असीम शांति तथा संसार में आवागमन से मुक्ति प्राप्त हुई है, परन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि केवल उन्हीं को, जिन्होंने उस चेतना में गोता लगाया। चेतना का वह स्तर उपलब्ध किया। शेष मानवता को इससे कोई विशेष लाभ हुआ हो ऐसा नहीं दिखायी दिया। क्योंकि जीवन से हटकर आत्मा में लय होने का अर्थ है विकास की सभी संभावनाओं की समाप्ति। जिसका परिणाम होगा – मानव-जीवन जगत में कला, प्रेम और सौंदर्य का अभाव।

मायावाद के आते ही भारत का पतन होना प्रारंभ हुआ। उसने कलात्मक जीवन को, सौन्दर्यात्मक बोध को,

सुख-समृद्धि को, धन-वैभव को, वैज्ञानिक प्रगति को निरर्थक वस्तु कहकर उनका बहिष्कार किया। मानव-जीवन-क्षेत्र सीमित होता गया। उसकी चिंतन-धारा एक पक्षीय, चेतना अंतर्मुखी, दृष्टि एकांगी। हमने आत्मा को पूजा, उसकी अभिव्यक्ति रूप इस जगत को मिथ्या कहा। परम सत्य को आत्मा के एकत्व में ही ढूंढ़ा और पाया, किन्तु उस एकत्व के आधारभूत चरम अस्तित्व के ज्ञान की ओर पीठ फेरी, जो एक होते हुए अनेक भी है, तत्व होते हुए पदार्थों की आत्मा भी है और सब पदार्थों के रूपों में भी है। जो सबका मूल है, जिससे ये सब पदार्थ निर्मित होते हैं।

---

*वाचालता महान दोष है। हमें सावधान रहना है कि कहीं हम वाचाल होकर ही तो संतुष्ट नहीं हैं। वाचाल नहीं हमें व्यावहारिक बनना है। जो शिक्षा हमने ग्रहण की है उसे व्यवहार में लाना है। इस तथ्य के प्रति सचेतन रहना है कि हमने भगवान का यंत्र बनने का संकल्प लिया है। जीवन में उनका आदेश पालन हमारा प्रथम कर्तव्य है। हम अन्तस्थ देव को समर्पित हैं। एक क्षण के लिए भी समर्पण को भूल कर, जीवन-मार्गों पर नहीं बढ़ना है। सारी सत्ता केवल आत्म-सत्य की ओर प्रवाहित हो। जीवन उसी की चरितार्थता का स्वरूप हो। हमें स्मरण रखना है कि जीवन, जीवन-स्वामी का है। उस पर उनका पूर्ण अधिकार है। वे जिधर चाहें मोड़ें। हमें केवल उनके हाथों की मुरली बनना है, जिसमें वे जो चाहें स्वर निकालें।*

## धर्म संकीर्णता -- एक घुटन

जो धर्मरूपी भवन आध्यात्मिक सत्य पर आधारित नहीं है, अगर वह अपने अंदर संपूर्ण संसार को समाविष्ट करना चाहेगा -- जैसा करना कि कुछ धर्म चाहने लगे हैं -- ऐसी स्थिति में या तो वह स्वयं भग्न हो जाएगा, टुकड़ों में विभाजित हो जायेगा अन्यथा उसकी सीमितता, संकीर्णता देख कर जन-समुदाय स्वयं उस से बाहर आ जाएगा। किसी भी स्तर पर संकीर्णता एक घुटन होती है।

हमें चाहिए कि धर्मों की, मत एवं पंथों की, समाज-समीतियों की संकीर्णता में बंद न रहें। उससे बाहर आएं। हमारे प्राचीनतम शास्त्र हमें आध्यात्मिक चेतना की विशालता में उठने का पाठ पढ़ाते हैं। वे हमें धार्मिकता की चारदीवारी में बंद देखना नहीं चाहते। उनका सार-गर्भित कथन है -- धर्म एक पंथ है, मार्ग है, गंतव्य नहीं। धर्म सीढ़ी है स्वर्ग नहीं। हमें धार्मिक होकर ही संतुष्ट नहीं होना चाहिये। मानव जीवन आत्म-साक्षात्कार के लिए होता है। हमें चाहिये कि उसे ही लक्ष्य रूप में निर्धारित करें। आत्मा हर पदार्थ का सत्य स्वरूप है, मूल उद्गम है।

सभी धर्म मेरे हैं। ऐसा कोई धर्म नहीं जिसमें मैंने जन्म न लिया हो। सभी धर्मों, देशों, जातियों और संप्रदायों को मैं समान रूप से प्रेम करता हूँ। किन्तु, क्योंकि मैंने सभी धर्मों में जन्म लिया है, अतः मेरे पास धर्म संबंधी अनुभवों का

एक अति विशाल भंडार है। मैं चाहता हूँ कि धरती की सतह पर यत्र-तत्र निवास करनेवाले सभी अभीप्सु इन अनुभवों से लाभान्वित हों और फलस्वरूप धर्म-संकीर्णता से, संप्रदायों की परिधि से बाहर आयें, आत्मा की मुक्त चेतना में अपना निवास संभव बनायें।

सर्व प्रथम मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। व्यक्ति-सत्ता का तथा विश्व सत्ता का मूलभूत सत्य एक अखंड, अद्वितीय परमेश्वर है। यह संपूर्ण सृष्टि उसी से उत्पन्न हुई है। उसी की रचना है, उसी की आत्म-अभिव्यक्ति है। इसका मूल, इसका उद्गम वही एकमेवाद्वितीय अनादि दिव्य सत्ता है। जिसे हम परम-पुरुष भी कहते हैं और परम आत्मा भी। जिसे भिन्न-भिन्न धर्मों में, देशों और जातियों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। दूसरी ओर, धर्म साधन है, साध्य नहीं, कर्म है फल नहीं, कुसुम है गंध नहीं। औषधि है संजीवनी नहीं। वस्तु है उसका सार नहीं, उसमें निहित आत्म-माधुर्य, उसका आनंद नहीं।

मनसातीत दृष्टिकोण के आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य के लिए अंतिम बंधन धर्म होता है। आत्मा की स्वतंत्रता में स्थायी रूप से स्थित होने के लिए हमें धर्म से ऊपर उठना होता है। अपनी धार्मिक भावना को आध्यात्मिक चेतना की, सत्, चित्, आनंद की आत्म-परिपूर्णता से पूर्ण बनाना होता है। उसकी दिव्यता में दिव्यीकरण करना होता है।

भागवत यंत्र को – जो कि संसार में भगवान का कार्य करता है, और जिसका हर कदम भागवत आदेश के

अनुसार ही उठता है – जाति और धर्म की चेतना-परिधि से ऊपर उठना होता है। तभी अपने लक्ष्य में, कार्य-सिद्धि में पूर्णतः सफल होता है। अन्यथा, इन चीजों के अल्प-मिश्रण के रहते, उसके द्वारा कृत भागवत संकल्प की चरितार्थता अपूर्ण, सदोष और मिश्रित रहेगी। प्रचलित धर्म भ्रांतिपूर्ण हैं, धर्म के शुद्ध, सही, शास्त्रीय स्वरूप नहीं हैं। वस्तुओं के भीतर निहित "ऋतम्" ही उनका धर्म है। वह ऋतम् सत्य है, वृहत् है, चैतन्यमय है, आनंदरूप है और वहीं से वस्तुओं को उनके सत्य स्वरूप की ओर प्रेरित कर रहा है।

----

*वेद, जो कि मनुष्यों के द्वारा ही नहीं वरन् देवों के, महान आत्माओं, सिद्धों एवं आचार्यों के द्वारा भी वंद्य हैं, उसका मुख्य कारण यही है कि वह ईश्वर की वाणी है, सर्वोच्च आध्यात्मिक चेतना की अभिव्यक्ति है। परम आत्म-ज्ञान की निधि है। व्यक्त ब्रह्म की प्रथम अभिव्यक्ति ओ३म् है। ओ३म् परमात्मा का सर्वोत्कृष्ट नाम है। ओ३म् को हम सर्वोच्च मूल हिरण्यगर्भ कहने का साहस कर सकते हैं, जो कि सृष्टि का, श्रुतियों का उद्‌गम है।*

## साधनामय जीवन— सबके लिए

साधना की, साधनामय जीवन की आवश्यकता केवल साधकों को, विरक्त तथा संन्यासियों को, ब्रह्मचारियों अथवा भिक्षुओं को ही नहीं होती। साधनामय जीवन सबके लिए, संसारी अथवा संन्यासी दोनों के लिए श्रेयस्कर है। साधनामय जीवन में हम समता में निवास करते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का त्याग करते हैं। निम्न प्रकृति की इच्छाओं को, आवेगों को नियंत्रित करते हैं। अहंकार के स्थान पर अंतरात्मा के पथ-प्रदर्शन में जीवन-मार्गों पर अग्रसर होते हैं। साधनामय जीवन हमें प्रभु के प्रति समर्पित होकर जीने की प्रेरणा प्रदान करता है। प्रभु-संकल्प को, उसी की अभिव्यक्ति को जीवन में सर्वोपरि स्थान प्रदान करना जीवन का स्वरूप होता है। इन सबके साथ-साथ साधनामय जीवन हमें सचेतन होना सिखाता है। हम अपने विचारों के प्रति, अंदर-बाहर भागवत उपस्थिति के प्रति सचेतन होते हैं। जिसका व्यावहारिक स्वरूप है इस ज्ञान में निवास – कि किस समय हम किस शक्ति के प्रभाव में हैं, दैवी या आसुरी; कौन-सा कर्म हमारे हृदय-आवरण को हटाने में सहायक है और कौन-से वे कर्म हैं जो उसे और घना करते हैं। कौन-सा वह भाव है जिसे ग्रहण करने से भगवान हमारे जीवन का सब भार उठाते हैं। उनकी रक्षा के अंदर, उनके कर-कमलों में सुरक्षित रहते हुए गंतव्य प्राप्त करते हैं।

## अतिमानस अवतरण – १९५६

आने वाला जगत अतिमानसिक जगत है, जिसमें सबकुछ अतिमानसिक विधान के द्वारा चालित होगा। अतिमानस के शासन में व्यवस्थित, क्रियान्वित होगा। अतिमानस एक दिव्य चेतना है। पूर्णतः सत्यमय है और मानव-चेतना का सत्य-चेतना में आरोहण संभव बनाने के लिए सब भांति समर्थ है। जगत में सामूहिक रूप में, अर्थात् पार्थिव चेतना में अतिमानस का अवतरण श्री अरविंद के जीवन-काल में ही संभव हो चुका था। २९.२.१९५६ से उसकी ठोस, सक्रिय अभिव्यक्ति प्रारंभ हुई है। धीरे-धीरे पार्थिव चेतना में, मानव जीवन और स्वभाव में इसके प्रति ग्रहणशीलता बढ़ रही है। यही कारण है कि, अतिमानसिक ज्योति तथा चेतना को हम संसार में अधिकाधिक तीव्र वेग के रूप में अवतरित होते देख रहे हैं। आशा है अगले सौ वर्ष में संसार कुछ व्यक्तियों में अतिमानसिक प्रकृति की दिव्यता स्पष्ट देखने में सफल होगा। ये ही अतिमानसिक युग के पुरोधा, पृथ्वी पर प्रथम अतिमानव होंगे। अतिमानव दिव्य मानव होगा, एक अलौकिक भागवत व्यक्तित्व के सभी लक्षण, सभी क्षमताएँ उसके स्वभाव में होंगी। वह सबका अपना होगा। उसके ज्योतिर्मय शरीर के रोम-रोम से आत्मा का माधुर्य प्रवाहित होगा। आत्मीयता झरेगी। सारी मनुष्य जाति उसे देव-मानव कह कर सम्मानित करेगी।

## दिव्य माली

भव उपवन का माली सुबह होते ही नई कलियों को निहारता है। जो समय पर नहीं खिलती, किन्हीं कारणों से जिनके खिलने में देर होती है, उनके समीप खड़ा चिन्ता प्रकट करता है। फिर कुछ सोचकर कल खिलेगी, ऐसा कहकर आगे बढ़ जाता है। दूसरे दिन फिर वही। नाटक के दृश्य-सी यह घटना कभी-कभी युगों भी दुहराई जाती है। माली आशावान है। कुछ भी हो यह मानना पड़ेगा कि माली आशावान है। मुझे उन व्यक्तियों के बीच में रहने का अवसर प्राप्त हुआ है जिनके साथ मैं द्वापर तथा त्रेता में भी था। किन्तु अफसोस ! अभी भी उनका हृदय-कमल नहीं खिला। प्रगति अति धीमी है। मनुष्यों की दशा दयनीय है। ये अचेतनता से बाहर आना चाहते हुए भी नहीं चाहते। इन्हें समझना चाहिये कि बिना सचेतनता प्रगति नहीं, वह खूंटे से बंधी नाव पर चप्पू चलाने की तरह है। प्रगति के लिए पुरुषार्थ जितना अनिवार्य है, सचेतनता उससे अधिक अनिवार्य है।

---

*आत्म ज्ञान तथा चेतना का अवतरण उस मन में सदैव संभव है, जो शुद्ध है, शांत है, निरभिमान है, उद्घाटित है।*

*एकाग्रता, नीरवता, सत्यता, आत्म-संयम तथा समर्पण का भाव इसमें सहायक हैं।*

## सूत्र

हमें अपना व्यक्तित्व खोना नहीं, हमें लय नहीं होना है। उसे विशाल और दिव्य बनाना है। अपनी सत्ता के उच्चतम सत्य के साथ सतत तादात्म्य लाभ करके उसके स्वभाव को अपनाना है। संसार में हमारी स्थिति वही होनी चाहिये, हमारी चेतना का स्तर वही, जो हम अपनी सत्ता के उच्चतम स्तरों पर हैं। उस चेतना में निवास करते हुए, उसके संकल्प को अपनी आत्मा में धारण किये हुए हमें प्रभु के कार्य के लिए बार-बार पृथ्वी पर आने की अभीप्सा करनी चाहिये। आत्मा में सचेतन व्यक्ति की ज्योतिर्मय मानसिकता यही है। एक जिज्ञासु की, जिसे परम आत्मा का, परमार्थ तत्व का तथा उसकी अभिव्यक्ति का अस्तित्व के सब स्तरों का समग्र ज्ञान है। मुक्तावस्था का यही स्वरूप है।

* * *

अभी मनुष्य सुरंग के इस पार खड़ा है। हमें चाहिये अपने आपको फुलायें नहीं, गर्व न करें। उसमें से पार होना हमारे लिए असंभव हो जायेगा। सुरंग कहें या गुफा, यह हमारे हृदय में स्थित है। इस गुफा में ईश्वर का निवास है जो हमारी सत्ता का मूल सत्य है। इस सुरंग का दूसरा द्वार उस अनंतता में खुलता है जो मूल अस्तित्व है। आनंद के, अमृत के सिंधु जहाँ हिलोरें लेते हैं।

हे मानव ! इस संसार के हर पदार्थ तथा हर प्राणी में प्रेम से भरपूर एक दिव्य शक्ति मंजूषा में मणि की भांति विद्यमान है। उसके प्रति सचेतन हो। संसार में अवतरित हर आत्मा प्रभु की संतान है। वह हम सब का पिता है। भव-उपवन का वह दिव्य माली इसके हर पुष्प को प्रेम करता है। उसकी सुरक्षा के लिए, उसके विकास के लिए, उसे सुखी करने के लिए हर संभव प्रयास करता है। इस तथ्य को जान। इसके प्रति सचेतन बन कर व्यवहार में, कर्म में आगे बढ़।

* * *

मनुष्य नयी चेतना के विषय में पूर्ण अचेतन हैं। मानों उन्होंने चादर ओढ़ ली है। इसकी ओर से आँखें मूंद ली हैं। वे भूत काल से चिपके रहना चाहते हैं। पुरानी वस्तुओं से बंधे रहना चाहते हैं, उन्हें अब तक के चले आ रहे मूल्य प्रदान कर संतुष्टि अनुभव करते हैं। कैसे समझाऊँ इन्हें, कैसे इनमें उद्घाटन संभव हो, कैसे ये जागें, कैसे विश्वास करें कि युग बदल गया है, विश्व-विधान में परिवर्तन आ चुका है। एक नयी चेतना पृथ्वी पर अवतरित हुई है। जो संसार को रूपांतरित करने में संलग्न है। मनुष्य का जीवन-स्तर ऊँचा उठाने में क्रियारत है। श्रीमाताजी के अनुसार– अगर मनुष्य इस महान तथा अभूतपूर्व कार्य में अपना सहयोग प्रदान करें तो यह अत्यंत श्रमसाध्य कर्म सुगम हो सकता है।

हमारे अंदर हमारा सच्चा अहं, सच्चा व्यक्तित्व हमारी आत्मा है। यह सब धर्मों, जातियों, वर्णों और वर्गों से ऊपर होती है। अतः हम अपने सच्चे स्वरूप में न हिन्दू हैं, न मुस्लिम, न ईसाई न और कोई। ये सब चीजें धरती की अर्थात् समाज की देन हैं और मनुष्य की रचना हैं। समाज मनुष्यों को नहीं बनाता, मनुष्य समाज को बनाते हैं। अगर मनुष्य अपूर्ण है, उसके स्वभाव में दोष और त्रुटियाँ हैं, दृष्टिकोण सीमित है तो समाज में भी अपूर्णता आदि ये सब चीजें रहेंगी ही। जिस समाज में ये सब चीजें हों और जब तक रहेंगी वह कभी स्थायी सुख-शांति लाभ नहीं कर सकता।

* * *

नये व्यक्तित्व में स्थित होने के लिए हमें ऐन्द्रिक जीवन से ऊपर उठना होता है। भोगों की वासना में जब तक मन डूबा है, तब तक निश्चय समझें कि हृदय पर पर्दा घना है और यह तो संपूर्ण सत्ता की, अंतःकरण की शुद्धि के पश्चात् ही संभव है कि हमें हृदय में गुफा अथवा सुरंग दिखायी देती है। ज्योति-दर्शन लाभ और अनंतता में प्रवेश-पथ प्राप्त होता है। हमारे और हृदय-निवासी सत्ता के बीच पर्दा रहते कुछ भी दिखायी देना संभव नहीं है। हम केवल अंधकार ही देखते हैं। हृदय के अनावरण के पश्चात् ही मानव का भाग्योदय होता है। उसका जीवन-आंगन आध्यात्मिक सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है।

हे प्रभो ! ऐसा कर, शीघ्र ही मनुष्य वह दिन देखे जहाँ वह अपने क्षुद्र अहंमय व्यक्तित्व की सीमाओं से बाहर आये। मानव मात्र को अपना सखा समझे। प्रेम उसके व्यवहार में सर्वोपरि गुण हो। भ्रातृत्व की भावना उसके विचारों की प्रेरक हो। मानव मात्र को अपने परिवार का अंग माने। उसके मंगल के लिए अपने सर्वस्व की भेंट चढ़ाने को तत्पर रहे।

* * *

बाह्य जीवन में उन्नति करने के लिए महत्वाकांक्षाओं का होना, ऊँची कामनाएँ पालना, ऊँचे मनोरथ लेकर चलना होता है। बाह्य सत्ता के लिए व्यायाम, स्वाध्याय, कला में रुचि, देश पर्यटन अनिवार्य हैं। किन्तु आंतरिक स्तर पर उन्नति के लिए अंतर्मुख होना होता है। जब आत्म-साक्षात्कार की अभीप्सा तीव्र हो उठे तब हर घटना से पीछे कदम हटाना आवश्यक हो जाता है। एक बार अंतर्सत्ता पर प्रभुत्व हो जाये, हम पुनः जीवन को समग्र रूप में ग्रहण कर सकते हैं। तब हम जीवन के, प्रकृति के दास नहीं, स्वामी होते हैं।

* * *

जब मनुष्य अपने पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति सचेतन हो जाता है, उसके मूल को प्राप्त कर लेता है, उद्गम को जान लेता है, जब उसे सृष्टिकर्ता का दर्शन सुलभ हो जाता है और वह एकमेवाद्वितीयम् सत्ता के साथ, जो कि सीमाहीन अनंत है,

तदाकार हो जाता है, तब वह धार्मिक तथा जातीय चेतना की संकीर्ण परिधि से ऊपर उठ जाता है। वह किसी एक समाज अथवा सम्प्रदाय का नहीं रहता। किसी देश अथवा राष्ट्र से बंधा नहीं होता। वह असीम चेतना में निवास करता है। सारा विश्व उसकी दृष्टि में एक परिवार है। मानव मात्र उसका अपना अंग होता है।

* * *

देख रहा हूँ मनुष्य जाग रहे हैं। प्राचीनतम श्रुति-शास्त्रों की वाणी को पुनः सुनने में रस ले रहे हैं। उनमें श्रद्धा का उदय हो रहा है। वे मिश्रित सत्य से ऊपर उठना चाहते हैं। अपने हृदय-स्थित आत्मा को पूर्ण आवरण हीन देखना चाहते हैं। उसकी वाणी स्वयं सुनना चाहते हैं, किसी के द्वारा नहीं। व्यक्तिगत स्तर पर सीधा अपने लिए भागवत आदेश जानना चाहते हैं। एक ऐसा चेतना-स्तर उपलब्ध करना चाहते हैं जहाँ आत्मा की दिव्यता, उनके अज्ञानमय जीवन को आत्म-प्रकाश से परिपूर्ण कर दे।

* * *

संसार को आज जिस प्रकाश की आवश्यकता है वह हमें वेद ही प्रदान कर सकता है। वह अमर आलोक, वह संजीवनी सुधा वेद है, वेदों में है। मनुष्य-स्वभाव की नाना प्रकार की वर्तमान निम्न वृत्तियों से मलिन वसुधा-तल को अगर कोई मंत्रपूत जल-धारा धो सकती है तो वह वेद रूपी ज्ञान गंगा की ही ज्योतिर्मय विमल सलिल-धारा हो सकती है।

अब समय आया है। मानव बुद्धि कुछ तैयार प्रतीत हो रही है। हम संसार में एक सामंजस्यपूर्ण, सुख-शांतिमय जीवन की स्थापना में सफल नहीं हो पा रहे हैं। अतः वेदों की शरण ग्रहण करने की अभिलाषा मानव मन में, हृदय में उठ रही है। हम अपनी सब जातीय तथा धार्मिक समस्याओं का समाधान वेदों में खोजने का प्रयास करने लगे हैं। अब हम समझ रहे हैं कि वेद ही मानव आत्मा के पूर्ण विकास में सच्चे पथ-प्रदर्शक हैं। वही उसे उसकी आध्यात्मिक भवितव्यता से जोड़ने में सेतु तथा सहायक सिद्ध होंगे।

* * *

समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल एक अखंड परम चैतन्य है। सब उसी से आया है। उसी की अभिव्यक्ति है। उसी की किरणें हैं। देव, दानव तथा मानव, कुंजर कीट, पतंग सब उससे ही प्रेरित है। बुद्धिहीन हो या बुद्धिमान सबके पीछे वही है। जड़ भासित होने वाली इस सुंदर सृष्टि के, इस भव-उपवन के मूल में, वही अतिचेतन, उसी का अंतर्वेग स्थित है। यह उसी के संकल्प की चरितार्थता है। सारे रहस्य उसके अपने हैं, उसके अपने अंदर हैं, अखिल आश्चर्यों का आधार वही है। सब चमत्कार उसी से जन्म लेते हैं। परम चैतन्य, कल्पनातीत एवं एक अद्भुत तत्व है। संपूर्ण सृष्टि उसी की योजना का एक अति अल्प-सा प्राकट्य है।

* * *

## भावना के प्रेदेश में

बहुत हुए हैं वे सब जिन्होंने इस संसार की अज्ञान-अंधकारमय स्थिति को ज्योतिर्मय बनाने का प्रयास किया। वे भी कम नहीं हुए जिन्होंने मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए अपने सब सुखों का त्याग किया। उनके नाम भी हम स्वर्णिम अक्षरों में पाते हैं जिन्होंने मानव मात्र को मुक्ति प्रदान करने के लिए अपने सर्वस्व की– जो वे थे, जो उनके पास था, जो उनकी उपलब्धियाँ थीं, बलि चढ़ा दीं।

बहुत हो चुका। बहुत हो रहा है। होता भी रहेगा। हे मानव ! तेरे अंदर ऐसी कोई दिव्य वस्तु है, कोई ऐसा आकर्षण का केंद्र है, जिसके कारण तेरे जातीयगण ही नहीं, देवगण भी, महान आत्माएं ही नहीं, परमात्मा भी तुझे प्रेम करते हैं। तू भली-भांति जानता है कि तेरी ओर से कभी किसी महापुरुष को सहयोग नहीं मिला। इसके विपरीत तूने उन्हें कष्ट दिये। यंत्रणाएं दीं। प्राण लिए। लेकिन, महापुरुष तो महान होते हैं। वहाँ लघुता कहाँ? तुच्छता कैसे प्रवेश पायेगी? वे बराबर आते रहे। आते रहेंगे। तेरा द्वार खटखटाया, खटखटाते रहेंगे। तेरे ऊपर, तेरे जीवन पर, तेरी धरती पर बराबर कृपा बरसायी, बरसाते रहेंगे।

लेकिन, भीतर से बाध्य होकर, न चाहते हुए भी किसी अदृश्य शक्ति से प्रेरित होकर कहना पड़ रहा है कि तू अभी

तक नहीं जागा, क्या आज भी नहीं जागेगा ? तेरा भी तो कुछ कर्तव्य होता है। तेरी ओर से भी तो सहयोग प्राप्त होना चाहिये। अतः अब जाग ! अपना कर्तव्य निर्धारित कर ! इस दिव्य वाणी को सुन – पुरुषार्थ से, सत्यता से, उच्च चरित्र से संसार में सब सुलभ होता है।

---

*जो सत्य हमारे कितना चाहने पर, मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में बंद नहीं किया जा सकता। जिसे कोई भी जाति अपना कहकर, दूसरों के लिए उसका द्वार बंद नहीं कर सकती, जिसके विषय में कोई भी शास्त्र यह दावा नहीं कर सकता कि वह इतना मात्र ही है, इससे परे, इससे बाहर नहीं।*

*जिस सत्य का प्रकाश मूलशंकर को ऋषि में परिवर्तित कर सकता है, मानव बुद्धि में उस विचार को पुनः प्रतिष्ठित कर सकता है, जिसकी ओर से संसार आँखें मूंद चुका था, उस संस्कृति की ओर पुनः मानवता के हृदय में आकर्षण उत्पन्न कर सकता है, जिसकी ओर से वह अपना मुख फेर चुकी थी। मानव हृदय के अंदर उस चिनगारी का रूप ग्रहण कर सकता है, जो संसार को हिला सकती है। हे मानव ! उस सत्य के दर्शन का अभिलाषी बन। वह सत्य परमात्मा का स्वरूप है। उसमें प्रतिष्ठित होने की अभीप्सा अपने हृदय में जगा।*

## साधन-क्षेत्र

आचार्यश्री को घेरे शिष्यगण बैठे थे। आचार्य प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। शंकाएं समाधान लाभ कर रही थीं। एकाएक वे बोल उठे – हमारे आश्रम में एक गाय है, जिसका जब चाहे दूध निकाल सकते हैं। शिष्यगण उस गाय का नाम बताएँ।

शिष्य एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। वर्ग में पूर्ण निस्तब्धता छा गई। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो सभी किसी गहन चिंतन में डूबे हैं। तभी सबके पीछे से एक कोमल, मंद, मधुर स्वर सुनाई दिया– "पुत्रो ! यह गाय तुम सबके पास है। तुम सबकी अपनी-अपनी है। यह गाय तुम्हारी साधना है, जिसके लिए तुम यहाँ एकत्र हो। जो कि जीवन में तुम्हारा लक्ष्य है। साधनामय जीवन क्षेत्र को उत्तम प्रकार के फल-फूलों से भरा-पूरा रखना तुम्हारे पुरुषार्थ पर निर्भर है। प्रभु-कृपा एक सहायक के रूप में हर पुरुषार्थी के पीछे सदैव विद्यमान रहती है। पुरुषार्थ करना तुम्हारा, मानव मात्र का कर्त्तव्य है। सबको अपना कर्त्तव्य पूर्ण करना ही चाहिए। भगवान भी अपने कर्त्तव्य पालन में कभी पीछे नहीं रहते। वे ठीक समय पर हमारे शुभ कर्मों का शुभ फल अवश्य प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि उसके लिए तुम्हें प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं, स्वतः प्रदान करते हैं।"

शास्त्रों में गाय, आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक है। उसका दूध अर्थात् उसका सार, मुक्ति प्रदान करनेवाला आत्म-ज्ञान।

## भावी क्रांति का स्वरूप
### अतिमानस का स्पर्श

अतिमानस अपने प्रथम स्पर्श में मानव-हृदय में सुप्त चेतना को जगायेगा। अभीप्सा की अग्नि, जिसे हम चैत्याग्नि कहते हैं – जो निम्न प्रकृति के द्वारा, उसकी इच्छाओं, आवेगों के द्वारा, आच्छादित थी उसे प्रज्वलित करेगा। फलस्वरूप मानव सामूहिक रूप में जागेगा। सत्ता के विषय में जो ज्ञान उसे आज तक प्रदान किया गया है, उससे संतुष्ट नहीं होगा। उसे समग्र रूप में जानने का प्रयास करेगा। आंतरिक स्तर पर भी सचेतन होने की, आंतरिक खोज को लक्ष्य-रूप में चुनने की तीव्र उत्कंठा उसके हृदय में उत्पन्न होगी। मानव जीवन एक भारी खोज का रूप ग्रहण करेगा। जिसका व्यावहारिक रूप होगा – पदार्थों में छिपी दिव्यता के साथ संबंध स्थापित करना, पृथ्वी के वातावरण को ऐसा स्वरूप प्रदान करना जो इस दिव्यता की चरितार्थता में सहायक हो। सामान्य जन भी वस्तुओं के ग्रहण में, उनके त्याग में परिवर्तन लायेंगे। वे अपने आपको उन्हीं वस्तुओं में व्यस्त देखेंगे जो ऊँची होंगी, सत्यमय होंगी, दिव्य होंगी। पृथ्वी का वातावरण, मनुष्य की मनोवृत्ति के साथ-साथ पर्याप्त परिष्कृत होगा। अज्ञान-अंधकार से भरे, स्वार्थ, लोभ, शत्रुता के भाव छोड़ कर चले जायेंगे। हम एक स्वर्गिक-सा वातावरण यहाँ धरती पर, अपने चारों ओर अनुभव करेंगे।

मनुष्य के जीवन-स्तर में उत्थान आयेगा। निम्नता, तुच्छता दिखायी नहीं देंगी। सबके प्रति मंगलमयी भावना से मानव-हृदय भरा होगा। जो प्रेम के स्पंदन विकीर्ण करेगा। सब को स्नेह भरी दृष्टि से देखेगा।

अतिमानस का पृथ्वी पर अवतरण एक महान क्रांति है। यह मानवता को बुद्धि के धुंधले प्रकाश से ऊपर उठा कर आत्मा की दिव्य ज्योति से ओत-प्रोत अतिमानसिक स्तरों पर स्थित करेगा। मिथ्या, अनाचार, अन्याय, अधर्म पृथ्वी के वातावरण से धो दिये जायेंगे। सर्वत्र प्रेम का प्राधान्य होगा। मनुष्य सत्य का पुजारी होगा। जीवन में, विचारों में, सत्य को ही सर्वाधिक महत्व प्रदान करेगा। स्वार्थ की भावना से मानव मात्र का हृदय मुक्त होगा। आत्मा की विशालता में, आत्म-एकत्व की भावना में एक नया, उच्च जीवन, आध्यात्मिक जीवन यापन करने के लिए उसे नये लोचन प्राप्त होंगे।

कुछ इने-गिने व्यक्तियों की बात पृथक है। लेकिन सामूहिक रूप में मनुष्य अभी तक, कभी भी, किसी युग में भी, जागा नहीं है। अपनी सत्ता के आंतरिक प्रदेशों में, जो कि उसके मूल सत्य के अधिक समीप है – वह सुप्त है। किन्तु अतिमानसिक चेतना – जो कि पृथ्वी पर अवतरित हुई है – उसे अवश्य जगायेगी। यह कार्य उसने अपने हाथ में ले लिया है। मनुष्य आत्म-अज्ञान से बाहर आयेगा। सीमित व्यक्ति-चेतना से ऊपर उठेगा। अज्ञान के द्वारा निर्मित कैंचुली को उतार फेंकने में समर्थ होगा, जो कि उसके जन्म से बहुत

पहले प्रकृति के द्वारा उसके लिए तैयार की जा चुकी थी। जिसे वह अपना आप समझने की भूल करता है। उसकी प्रकृति को अपनी मानने की भ्रांति में युगों से पृथ्वीं पर भटक रहा है।

आज वह स्वर्णिम मुहूर्त्त मानव के द्वार पर आ पहुँचा है। अपने सुन्दर, शोभायमान भवन के द्वार खोलते ही वह एक मुक्त, मधुमय स्वर्णिम समीर अपने चहुँ ओर अनुभव कर रहा है। जिसमें लिया हर श्वास उसे नई चेतना प्रदान करता है। एक विशाल तथा अलौकिक क्षितिज उसके भाव तथा विचारों के क्षेत्र के रूप में उसके सम्मुख खोलता है। जिसकी अतल गहराई में पैठते ही, असीम उच्चता में उठते ही, अनंत वितान के सोपान, उसे हर विचार के लिए, हर समस्या के समाधान के लिए सीमाओं से परे पहुँच कर सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। जहाँ मानव-मन देश-जाति तथा धर्म की परिधि में बंद होकर नहीं सोचता वरन् आत्मा की उस विशालता में उठ कर, जहाँ सभी दिशाएँ एक पुरुष का आत्म-विस्तार है। सबमें एक चेतना प्रवाहित है। एक जीवन से सब जीवित है। एक ही आत्मा की सब अभिव्यक्तियाँ हैं।

आंतरिक चेतना की भांति मनुष्य की बाह्य, बौद्धिक चेतना भी मूल ज्ञान-उद्गम से प्रेरणा ग्रहण करेगी। एक बहुपक्षीय सामंजस्य संसार में उपलब्ध होगा। वही मानव-जाति के जीवन का आधार होगा, भावी जन-कल्याण की योज़नाएँ उसी से प्रेरित होंगी जिनमें आंतरिक सत्य की

चरितार्थता, आत्म-विकास की महत्ता प्रमुख होंगी। जो व्यक्ति संसार का मार्गदर्शन करेंगे उनके विचारों के पीछे प्रेरक शक्ति एक ही होगी। मनुष्य एक दिशा में सोचेंगे। एकत्व में निवास करेंगे। एक पिता की संतान के रूप में मानवता को देखेंगे। प्रत्येक के लिए सभी अपने होंगे। आंतरिक प्रेरणा से चलाये चलेंगे। प्रेम-डोरी में बंधे होंगे। मंगल भावना से भरे होंगे। अपने आपको दूसरों में देखेंगे। दूसरों को हर्षित करने में आत्मिक संतुष्टि लाभ करेंगे।

यह होगा। और वह सब भी, जो मानवता को एक सूत्र में बांधने के लिए, भ्रातृत्व की भावना में उठाने के लिए, पृथ्वी के वातावरण को शांतिमय, सुखी, सामंजस्यपूर्ण बनाने के लिए, आत्मिक स्तर पर असीम विकास करने के लिए, आवश्यक होगा। अतिमानस ने यह कार्य अपने हाथ में लिया है। अतिमानस दिव्य चेतनाओं में सर्वोच्च है, सर्वशक्तिमान प्रभु का सर्वजयी संकल्प है। उसकी विजय अवश्यंभावी है। संसार परिवर्तित होगा। मानव-जीवन-स्तर उत्थान लाभ करेगा। मनुष्य सचेतन होंगे। पदार्थों में, प्राणियों में छिपी दिव्यता प्रकट होगी। संसार का रूपांतरण, वस्तुओं का दिव्यीकरण संभव होगा।

आनेवाला समय अद्भुत होगा। पृथ्वी पर आत्मा की दिव्यता पदार्पण करेगी। मनुष्य में छिपा उसका आंतरिक सत्य प्रकट होगा। उसके व्यवहार में परिवर्तन आयेगा, दिव्यता झलकेगी। वस्तुओं का सही, सच्चा स्वरूप देखने की दृष्टि

मनुष्य को प्राप्त होगी। उसका निवास सत्य में होगा। आंतरिक दिव्यता की चरितार्थता उसके जीवन का स्वरूप होगा। मनुष्य के भावों में क्षुद्रता, स्वार्थपरता, शत्रुता, ईर्षा-द्वेष नहीं रहेंगे। अंतस्थ आत्मा का स्वभाव ही उसका स्वभाव होगा।

अगर हर देश, जाति तथा धर्म के कुछेक व्यक्ति भी संसार को इस नई दिशा में मोड़ प्रदान करने का प्रयास करेंगे, मनुष्य जाति के इस रूपांतर में, वर्तमान मानव-स्वभाव का, उसके चेतना-स्तर का अतिक्रमण करने में सहयोग प्रदान करेंगे तो यह असंभव-सा प्रतीत होनेवाला कार्य सुगमतापूर्वक सम्पन्न हो सकेगा। संसार के हर व्यक्ति से श्रीमाताजी पूछ रही हैं – " क्या तुम सहयोग करोगे ?"

वर्तमान अज्ञानजनित सीमित चेतना से बाहर आने की अभीप्सा हमारे अंदर उठनी चाहिये ? हम अपनी चेतना को इतना व्यापक करें जो पृथ्वी के हर कोने को, संसार के हर व्यक्ति को अपने आलिंगन में बांध ले।

पृथ्वी की आत्मा पूर्ण आश्वस्त भाव से अपने हर होनहार शिशु में पूर्ण श्रद्धा के साथ, उसकी ओर मुस्कान भरी दृष्टि से निहार रही है। हमें चाहिये कि अविलम्ब परस्पर मिलकर कर्तव्य-पालन में संलग्न हो जायें। मातृ-हृदय को जितना शीघ्र संभव हो आनंदित करें।

## सीमित अहं के पार
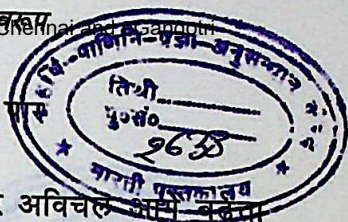


सत्य का पुजारी अपने पथ पर अविचल आगे बढ़ता है। कोई विरोध करके उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उसका विरोध करने का अर्थ है सत्य का विरोध। साम्प्रदायिकता से उसे कभी भय नहीं। वह सत्य का सैनिक है। 'न भयं तस्य कुत्रचित्।' सत्ता के बल के गर्व में आकर समाज अधिक से अधिक उसकी देह को ले सकता है। वह जब चाहे ले। उसे इसकी लेश मात्र भी चिंता नहीं होती। इसका अभ्यास रहता है।

सीमित अहं के पार, जब अंतर्मुख होता हूँ, मैं उसकी निर्वाच वाणी सुनता हूँ। मैं सत्य का पुजारी हूँ। सदैव था और रहूँगा। सभी देशों में, सभी जातियों में मेरे जन्म हुए हैं। अनेक बार मनुष्यों ने मेरा विरोध किया। अपने-अपने ढंग से मेरे प्राण लिये। उन्हें लेने का अभ्यास है। मुझे देने का। उन्हें लेने में आनंद मिलता है। मुझे देने में आंतरिक संतुष्टि। सत्य के पक्ष में मैं अडिग रहता हूँ। जीवन को आहुति का रूप प्रदान करता हूँ। सत्य की रक्षा के लिए प्राणों की तो क्या मैं अपनी आत्मा की भी भेंट चढ़ा सकता हूँ। मेरे लिए, मेरी दृष्टि में जीवन का नहीं, प्राणों का नहीं, केवल सत्य का ही मूल्य है, सत्य का ही महत्त्व है।

---

## वेद सूर्य

जब हमारा अंतर्मन सांसारिक पदार्थों की क्षण-भंगुरता को देखकर, एक विचित्र प्रकार की असंतुष्टि से घिर जाता है और हम किसी स्थायी समाधान को, वस्तुओं के आंतरिक सत्य को जानना, देखना तथा प्राप्त करना चाहते हैं, तब हमें पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता अनुभव होती है। हम वेद की शरण ग्रहण करते हैं और करनी भी चाहिये। वेद के अतिरिक्त अथवा उन शास्त्रों को छोड़कर जिनमें वेद की चिंतन-धारा और अनुभूति प्रवाहित हुई है, अन्य कोई शास्त्र ऐसा नहीं है जो मानव आत्मा को उसकी अभीप्सा की सिद्धि में सहायता प्रदान कर सके। हम कह सकते हैं कि जिन महापुरुषों ने संसार को सही दिशा दिखायी, आत्म-परिपूर्णता के पथ पर उसका मार्ग-दर्शन किया, जिनके संदेश अभी भी सूर्य के समान पृथ्वी के वातावरण को प्रकाशित कर रहे हैं, वे सब वेद रूपी सत्य-सूर्य की ज्योतिर्मय रश्मियों को ही विकीर्ण कर रहे थे।

---

*मानव मन के लिए जो ज्ञान अर्थात् सर्वज्ञ चेतना कल्पनातीत है, उसी की अभिव्यक्ति हमारे वेद हैं।*
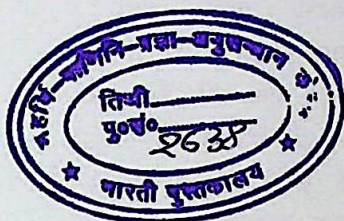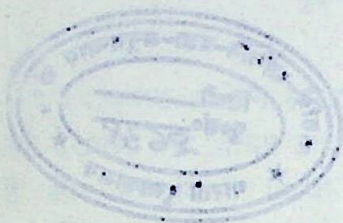
परम पिता परमात्मा अपनी हर संतान से आशा करते हैं कि वह उनके सृष्टि-निर्माण-कर्म में हाथ बंटाये, इसके लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता प्रदान करे। वह लक्ष्य है – सृष्टि का हर प्राणी अपने दिव्य मूल स्वरूप के प्रति सचेतन हो, उसकी दिव्यता में रूपांतरित हो। यह कहा जा सकता है कि अगर मनुष्य सहयोग प्रदान करें तो संसार के जीवन का स्तर शीघ्र ऊँचा उठ सकता है। लक्ष्य सिद्धि सुगम, सरल हो सकती है।

सुखवीर आर्य

# कुछ नवीन प्रकाशन

अभीप्सा, त्याग, समर्पण शब्द मात्र नहीं, आन्तरिक सत्ता की स्थितियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक को उसकी पूर्णता में सिद्ध करना, अपनी सत्ता में सर्वांगीण बनाना, सत्ता के हर अंग की चे[illegible]ना को उस [illegible]र पर उठाना, प्रदीप की लौ का रूप प्रदान करना श्रीअर[illegible]न्द के अति[illegible]सिक योग में अनिवार्य चरण है। इसी विषय को सर्वसा[illegible]ण के लिए [illegible]गम्य बनाने का प्रयास है "दिव्य जीवन की ओर"। पृ. [illegible], मूल्य : [illegible]

हर विचारशील व्यक्ति के सामने आज एक [illegible] है। "अतिमा[illegible] क्या है"? श्रीअरविन्द के द्वारा बार-बार घोषणा करने [illegible] इसके अ[illegible]त्व में, इसके पृथ्वी पर अवतरित होने में विश्वास करना [illegible] बुद्धि के लि[illegible] कठिन पड़ रहा है। इसे सरल, बोधगम्य बनाने का प्रयास [illegible] "अतिमानस की ओर"। पृ. १६०, मूल्य : ५० रु०

मनुष्य की संपूर्ण सत्ता का, उसके निम्नतम भाग शरीर का भी आत्मा की दिव्यता में रूपान्तर संभव है। रूपान्तर के विषय में हमारी धारणा सुस्पष्ट हो, इसी का प्रयास है, "रूपान्तर की ओर"। पृ. १६०, मूल्य : ५०रु०

आगामी अतिमानसिक युग में संसार हर वस्तु का एक नया, शुद्धतम रूप देखेगा। आध्यात्मिकता अपने नये तथा शुद्धतम रूप में जगत का त्याग नहीं करेगी। वरन्, आत्मा की दिव्यता में उसका रूपांतर संभव बनायेगी। इसी विषय की चर्चा है – "आध्यात्मिकता का नया स्वरूप"। पृ. १६०, मूल्य : ५०रु०

*प्राप्ति स्थान :–* श्रीअरविन्द बुक्स डिस्ट्रीब्यूशन एजेंसी,
श्रीअरविन्द आश्रम, पांडिचेरी–२

Rs. 60.00

Rs. 50.00